Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

...क

सारिका

वर्ष:२०: अंक:२७५

• ...रचनाएं
...जल नहीं रहा है!
...कहानियां तथा अन्य सामग्री

080584

टाइम्स ऑफ इंडिया प्रकाशन
२.०० रुपया

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

H.L.
SARIKA
1980
G.K.V.
Lib
HARDWAR

राध... कि...ब क्लब

कि... ...रें

केवल 10 र...

आपको राध... ...वर्चित पुस्तकों
पर भी एक...

पुस्तकों के व...

50 रुपये क...

हर महीने अथवा दूसरे महीने पुस्तकें मँगवाने का आप पर कोई बन्धन नहीं होगा।

नयी पुस्तकों की सूचना आपको लगातार मिलती रहेगी ताकि पुस्तकों का चुनाव करने में आपको सुविधा हो।

विस्तृत जानकारी के लिए आज ही लिखें और सदस्य बनें।

एक विशिष्ट साहित्यिक पत्रिका

अभिरुचि

लेखक और पाठक के बीच

• संवाद की त्रैमासिकी

संपादक : डा० विद्यानिवास मिश्र

खेमों तथा वादों से मुक्त रहकर पठनीय श्रेष्ठ सर्जनात्मक साहित्य के प्रति लेखक-पाठक की साझेदारी की ईमानदार कोशिश।

इसके हर अंक में आप पढ़ेंगे :

* नये प्रकाशनों के विषय में आस्वादपरक आलोचना
* रचनाकारों के साथ अनौपचारिक बातचीत
* महत्वपूर्ण प्रकाश्यमान रचना से कोई अंश
* पाठक समस्या पर लेख
* लेखक शिविरों/लेखक सम्मेलनों पर रपट
* विश्व साहित्य की उल्लेखनीय नयी कृति का प्रभावांकन
* अनेक अन्य स्तम्भ

एक प्रति 4 रुपये वार्षिक मूल्य 15 रुपये
(रजिस्टर्ड डाक से सवा दो रुपये प्रति अंक अतिरिक्त)

कृपया बैंक ड्राफ्ट, पोस्टल आर्डर या मनीआर्डर राधाकृष्ण प्रकाशन के नाम से ही भेजें। आज ही ग्राहक बनें।

पहला अंक जनवरी 1981 में प्रकाशय

...हिन्दी के पांच प्रतिष्ठित साहित्यकारों ने पिछले 10 वर्षों ...में हिन्दी में प्रकाशित सार्थक पुस्तकों का चयन किया है। ...राधाकृष्ण प्रकाशन के संस्थापक श्री ओमप्रकाश की स्मृति ...इन पुस्तकों की एक प्रदर्शनी भी दिल्ली में आयोजित की ...गयी। इस अवसर पर प्रकाशित सूचीपत्र निःशुल्क मंगवायें।

अच्छी पुस्तकों के लिए
राधाकृष्ण प्रकाशन
2 अंसारी रोड, दरियागंज, नई दिल्ली-110002

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नियमित रूप से थोड़ी-थोड़ी बचत कीजिये—और तब वह हर चीज़ आपकी होगी, जिसका आप हमेशा सपना देखते हैं।

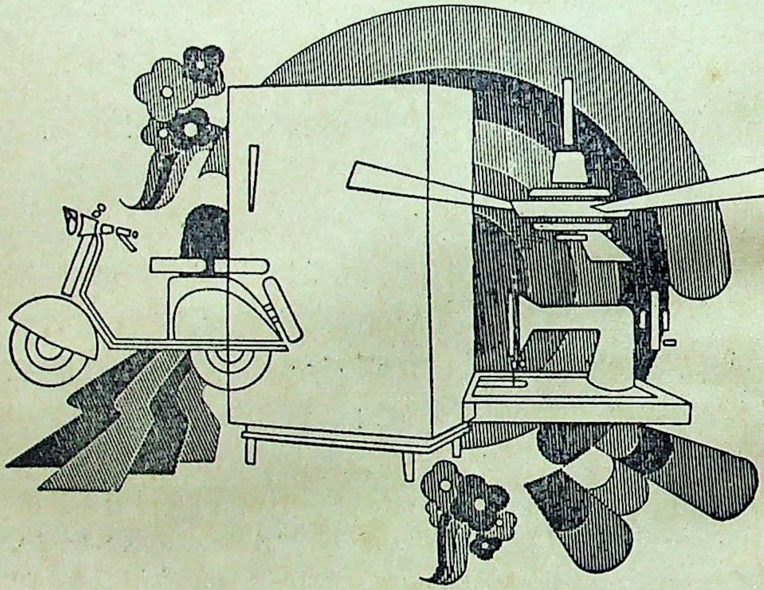

इलाहाबाद बैंक की रेकरिंग डिपॉजिट योजना आपके सपनों को सच करती है।

इस योजना की सबसे बड़ी खूबी यह है कि इसमें आप खुद तय करते हैं कि हर माह आपको कितना जमा करना है। कम से कम १० रुपये से लेकर अधिक से अधिक १,००० रुपये तक— १ से १० वर्ष तक की अवधि के लिये।

इस प्रकार आप बगैर किसी परेशानी के आसानी से बचत कर सकते हैं। और अन्त में जो आपको वापस मिलेगा, वह आपके जमा किये हुए पैसों से ५०%...या शायद उससे भी ज्यादा हो सकता है। तब आप बड़े आराम से वह सब कुछ खरीद सकेंगे, जिसका आप हमेशा सपना देखते हैं।

अधिक जानकारी के लिये अपने करीब की किसी इलाहाबाद बैंक की शाखा में पधारिये।

इलाहाबाद बैंक

आपका अपना बैंक

प्रधान कार्यालय : १४ इण्डिया एक्सचेंज प्लेस, कलकत्ता-७०० ००१।

U-AB 3A-HIN

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

M

प्रतिभा और सर्जनात्मकता

सुरेंद्रनाथ त्रिपाठी

पिछले बीस वर्षों में मनोवैज्ञानिकों और शिक्षाशास्त्रियों ने सर्जनात्मकता के अध्ययन में जो शोध किए, जिन विधियों का अपने परीक्षणों में उपयोग किया और जो निष्कर्ष निकाले गए, इस पुस्तक में उनका लेखा-जोखा प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है.

प्रतिभा, बुद्धि और सर्जनात्मकता का विवेचन करते हुए इनका सर्जनात्मकता पर क्या प्रभाव पड़ता है, इस संबंध में मेडनिक, बेलेश, कोगन, बैरन, बाकर मेंहदी और बालकृष्ण पासी आदि के कार्यों का उल्लेख किया गया है.

डिमाई अठपेजी, सजिल्द, पृष्ठ 190, मूल्य 37.00

हिंदी का समसामायिक व्याकरण

यमुना काचरू

यह पुस्तक रूपांतरणात्मक प्रजनक सिद्धांतों के द्वारा भाषा विज्ञान के क्षेत्र में उठाए गए सैद्धांतिक प्रश्नों से, हिंदी में हमारा प्रथम परिचय कराती है. यह पुस्तक अर्थविज्ञान और संरचना के परस्पर-संबंध की विवेचना करने के साथ-साथ वाक्यविन्यास संबंधी संरचना के नियमों को स्पष्ट तथा निभ्रांत ढंग से सामने लाती है. इसमें जिस भाषावैज्ञानिक सिद्धांत और माडेल को आधार बनाकर नियम प्रतिपादन किया गया है, उसकी आधार-भूत संकल्पनाओं को भी स्पष्ट किया गया है. मैकमिलन की भाषा भाषिकी सिरीज की यह तीसरी पुस्तक है.

डिमाई अठपेजी, सजिल्द, पृष्ठ 148, मूल्य 32.00

आधुनिकता और सर्जनशीलता

रघुवंश

प्रस्तुत पुस्तक तीन खंडों में विभक्त है. प्रथम खंड में सुधी लेखक ने आधुनिक साहित्य के संदर्भ में सर्जनशीलता के विविध रूपों तथा पक्षों पर विचार किया है. इसमें भाषा की सर्जनशीलता के अतिरिक्त साहित्य के मूल्यों और मानदंडों पर भी विचार किया गया है. द्वितीय खंड में लोक साहित्य और लोक काव्य को आधुनिक दृष्टि से परखा गया है. तीसरे खंड में हिंदी उपन्यास साहित्य और प्रेमचंद की प्रासंगिकता से संबंधित निबंध हैं.

डिमाई अठपेजी, सजिल्द, पृष्ठ 188, मूल्य 45.00

शोध : स्वरूप एवं मानक व्यावहारिक कार्यविधि

बैजनाथ सिंहल

प्रस्तुत पुस्तक शोध की प्रकृति और उसके प्रायोगिक स्वरूप का मानक स्थिर करने का एक प्रयास है. इसे अंगरेजी के 'एम. एल. ए. स्टाइलशीट' के अंतरराष्ट्रीय प्रयोगों को आधार मानकर लिखा गया है. शोध और शोधप्रबंध लेखन की समूची प्रक्रिया को उदाहरणों और अभ्यासों के माध्यम से स्पष्ट किया गया है. शोधार्थियों और शोधनिर्देशकों के लिए समान रूप से उपयोगी.

डिमाई अठपेजी, सजिल्द, पृष्ठ 180, मूल्य 45.00

भारती का काव्य

रघुवंश

इस पुस्तक में धर्मवीर भारती की संपूर्ण काव्ययात्रा का गहन विवेचन प्रस्तुत करते हुए उनके काव्य की विविधता को उजागर करने वाली रचनाओं को संकलित किया गया है. उद्देश्य है हिंदी साहित्य के विद्यार्थियों के लिए एक स्तरीय पाठ्यपुस्तक उपलब्ध कराना. यह पुस्तक इंद्रनाथ मदान द्वारा संपादित 'आधुनिक कवि : एक नया मूल्यांकन' सिरीज के अंतर्गत प्रकाशित दूसरी कृति है.

डिमाई अठपेजी, सजिल्द, पृष्ठ 116, मूल्य 22.50

हिंदी प्रचार विभाग

मैकमिलन इंडिया लिमिटेड

4 कम्युनिटी सेंटर, नारायणा इंडस्ट्रियल एरिया, फेज-I नई दिल्ली-110 028

U-AB 3A-HIN

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

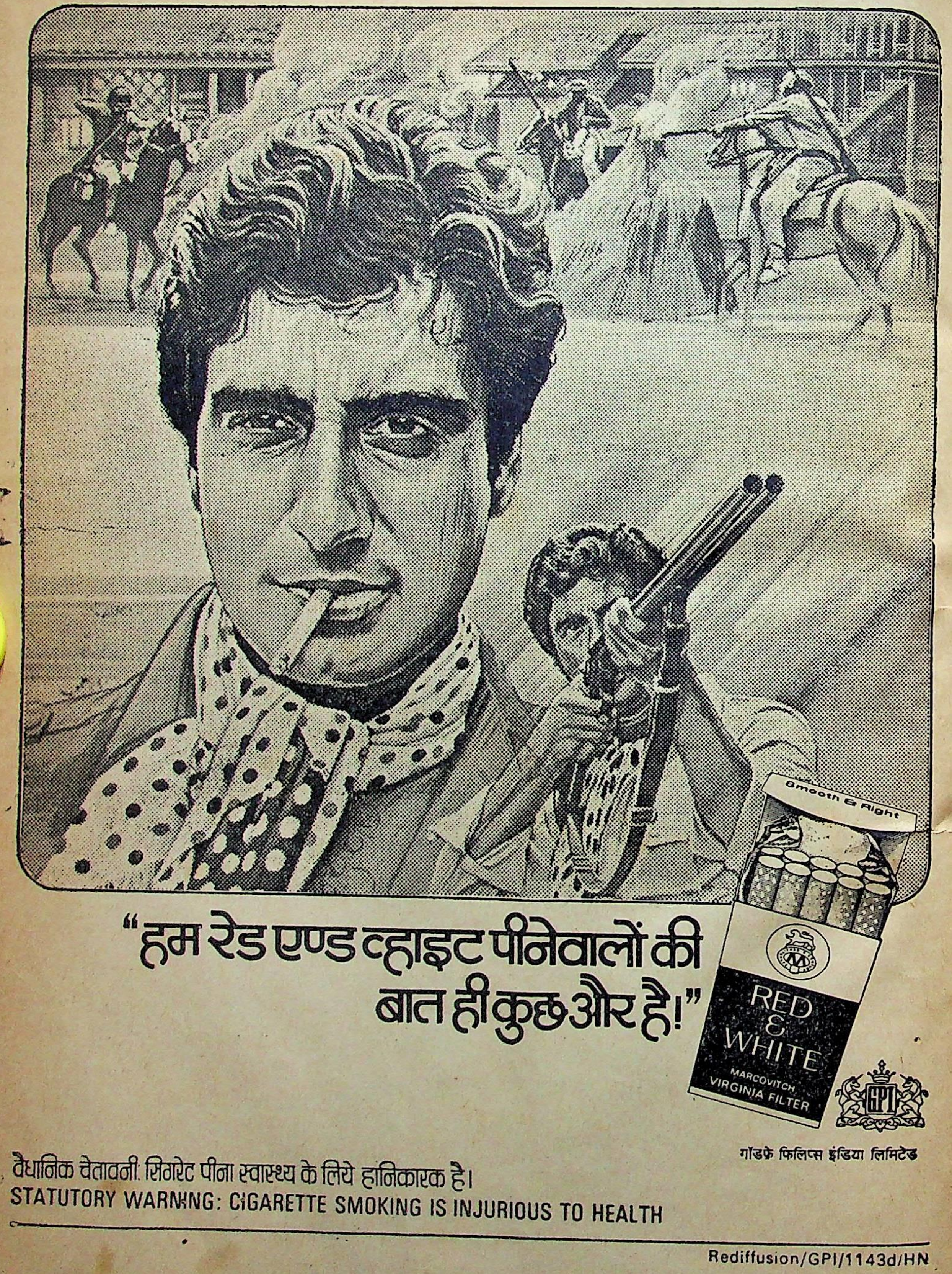

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

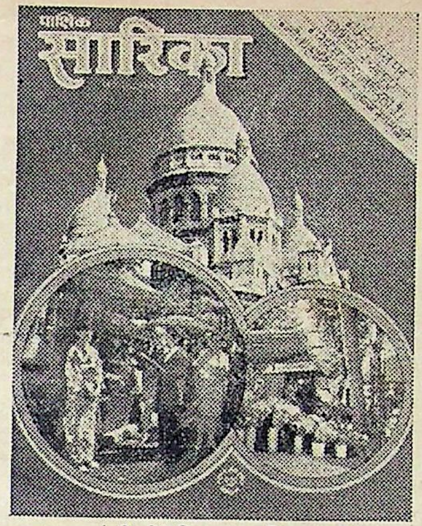

आवरण (तीनों चित्र) : विश्व विख्यात फ्रांसीसी छायाकार : रे हालिन

सारिका

कहानियों और कथा-जगत की जीवंत पाक्षिकी

वर्ष : 20; अंक : 275; 16 से 31 दिसंबर, 1980

कहानियां

18. जोज़फ गुड की पाप स्वीकृति : पाल ज़कारिया
22. लाज़ारस : कारेल चापेक
28. भटकती राख : दामोदर खडसे
32. सफेद रात : फिरटर विकसीन
36. लड़ाई स्थगित : सुरेश उनियाल
41. विमोहन : अरुणा सीतेश
46. आवश्यकता है कुछ अदद छात्रों की : राजेंद्र मेहता
48. मात : प्रेमकुमार मणि
54. दोनों : परमानंद श्रीवास्तव
63. एक शाम की कहानी : मोहन डिमरी

धारावाही उपन्यास

24. खुदा सही सलामत है : रवींद्र कालिया

साक्षात्कार

12. जगवीरसिंह वर्मा की रावी से बातचीत.

विशेष

50. अनजानी इतिहास कथाएं—कितना था बदनसीब ज़फर! : बाला दुबे
58. पेरिस की डायरी : विनोद भारद्वाज

लघु रचनाएं

15. चार लघुकथाएं : रावी
30. टाइपिस्ट : महेश दर्पण
34. राजेंद्र सिंह बेदी : दो प्रसंग
47. जेबकतरा : एखलाक अहमद जेई

ग़ज़लें

23. शिवओम अंबर
66. जाफ़र बेग, संतोष कुमार गौड़

अन्य आकर्षण

8. ज़रिया-नज़रिया
10. पाठकों का पन्ना
31. प्रसंगवश : महेंद्र कुलश्रेष्ठ
39. तस्वीर बोलती है : आर. के. गोयल
49. उनने कहा था
62. गपशप, कार्टून
67. पखवारे की पुस्तकें : डॉ. वचनदेव कुमार
72. हलचल .
73. पत्र-पत्रिकाएं

संपादक
कन्हैयालाल नंदन
मुख्य उप-संपादक :
अवधनारायण मुद्गल
उप-संपादक :
रमेश बत्तरा, सुरेश उनियाल, बलराम, अरुण वर्द्धन
सज्जा : रवि शर्मा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बीतते हुए वर्ष की संध्या में पाठकों को सलाम

बात विचित्र जरूर है लेकिन सरसरी तौर पर किये गये सर्वेक्षणों से पता लगा है 'सारिका' के स्तंभों में 'पाठकों का पन्ना' को पाठकों ने सबसे अधिक जीवंत, विचारोत्तेजक और दिलचस्प माना है और पत्रिका में उसे सबसे पहले पढ़े जाने के संकेत दिये हैं. हम अपने पाठकों के इस 'पक्षपात' के लिए आभारी हैं कि उन्होंने अपने ही 'पन्ने' को सबसे अधिक लोकप्रिय माना. दूसरा नंबर 'ज़रिया-नज़रिया' और 'अगले अंक की घोषणा' को दिया है. पाठकों की इस हौसला-अफ़ज़ाई के लिए हम उन्हें धन्यवाद देते हैं और बीतते हुए वर्ष की संध्या में अपने अभिनंदन भी. साथ ही निवेदन भी कि वे अपने आसपास की जिंदगी को 'सारिका' में प्रकाशित सामग्री के संदर्भ में (या वे चाहें तो इसके विपरीत) देखें-परखें और हमें पत्र लिखने से न चूकें. कई बार हमारे पाठक हमसे अधिक बढ़िया ढंग से सोचते हैं (बढ़िया सोचना सिर्फ हमारी ही ठेकेदारी है भी नहीं!) और कान ऐंठने में कमाल का कलम का जौहर दिखाते हैं. स्वागत है पाठकों की ऐसी सामग्री का जो सोच की धार को और तेज करने में सहायता करे, लेकिन पाठक मुझे अपने मन की बात कहने की इस वक्त माफी दें, मैंने कई बार उन्हें नितांत असहिष्णु भी पाया है. हमारे पाठकों का एक बहुत बड़ा वर्ग तात्कालिक प्रतिक्रियाओं के ओज में उलझ कर, विषय और व्यक्ति का ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य निगाहों से ओझल कर देता है. पाठकों ने अपनी इस असहिष्णुता का शिकार बनाने से किसी को नहीं बख्शा. वह चाहे हम हों, जैनेंद्र हों, अज्ञेय हों, कृष्णा सोबती हों, शिवप्रसाद सिंह हों या रघुपति सहाय 'फिराक' हों. बहुत पीछे न जाकर ताजा उदाहरण फिराक साहब का लेता हूं, जिसमें पाठकों को उनका हिंदी को 'डर्टियस्ट लिपि और बदबूदार जबान' कहना सबसे अधिक खल गया था. साहित्य के सुधी पाठक इस बात से भली प्रकार परिचित हैं कि फिराक के हिंदी संबंधी ये विचार नये नहीं हैं. दर्जनों बार अमृतराय उनसे भिड़कर बौखलाये हैं. कितनी ही बार हिंदी के मूर्धन्य साहित्यकारों ने उन्हें उनके इस 'हिंदी प्रेम' का डटकर जवाब भी दिया है. श्री केदारनाथ अग्रवाल का लिखा प्रत्युत्तर बहुत से पाठकों को अभी तक नहीं भूला. शायद इसीलिए उमाकांत मालवीय ने यह कहकर टाल दिया था इस बात को कि. . . .'गुजरे वक्तों के हैं ये लोग इन्हें कुछ न कहो.'

हम अपने पाठकों के विचारों और उनके भावों को दबाने की पेशकश में विश्वास नहीं करते. इसलिए हमने उनके पत्रों के विचारोत्तेजक अंश बराबर छापने में कभी हिचक नहीं दिखायी. लेकिन यह अफसोस भी करते रहे हैं कि क्या फिराक ने अपने इंटरव्यू में सिर्फ डर्टियस्ट लिपि और बदबूदार जबान वाली बात ही कही थी! ऐसा नहीं कि जो कुछ हम यहां कहना चाहते हैं, उसे किसीने पकड़ा नहीं. हमारे एक पाठक श्री अशोक गुप्त ने फरीदाबाद से लिखा था—"शब्दों को मात्र उनके ज्यामतीय आकार से पकड़कर चलने और मंतव्य तक पहुंचने की प्रक्रिया में मूल अभिव्यक्ति अंततः कुचली ही जाती है. और ऐसा आभास निश्चित ही तब होता है, जब यह प्रक्रिया एक 'मॉब मेंटैलिटी' के तहत गतिमान हुई हो." हम चाहते हैं कि हमारा पाठक सिर्फ मॉब मेंटैलिटी में न रमे, गहरे उतरकर सोचे. असल में वह फिराक नहीं, सचमुच शीर्षक की तरह 'सदी बोल रही थी.' दिनकर बोलते थे तो युग बोलता था, महादेवीजी बोलती हैं तो हमारी मनीषा का समूचा युगबोध बोलता है. आक्रोश के जज्बे की बात अलग होती है. लेकिन यह सच है कि एक सदी में फिराक या 'दिनकर' या महादेवी पैदा होने की दर ज्यादा नहीं हुआ करती.

—संपादक

सन् १९८० का सफरनामा

ज़रिया नज़रिया

हर जाने वाला साल हमें कुछ-न-कुछ देकर जाता है. इस (1980) ने हमें कुछ ज्यादा ही अनुभव दिये हैं. ये अनुभव इंसानी जिंदगियों से खिलवाड़ के हैं, का और व्यवस्था के बिगड़े हुए हाला हैं, अल्पसंख्यकों पर ढाये गये अ वीय अत्याचारों के हैं, बढ़ती महंगाई, राजनीतिक अस्थिरता, च डकैती, हत्या और बलात्कार के और इनके साथ ही आत्मग्लानि स्वीकृतियों के भी हैं. 'सारिका' ने वर्ष इन हहराती समस्याओं पर अ नज़रिया प्रस्तुत किया है.

अजीब संयोग है कि 1980 प्रारंभ चंद नेत्रहीनों के संदर्भ से हु था और उसका अवसान भी नेत्रहीन संदर्भ से ही हो रहा है. 16 मार्च, को राजधानी की पुलिस ने अंधों जुलूस पर लाठीचार्ज किया था अभी इस वर्ष के जाते-जाते बिहार पुलिस ने चंद कैदियों को बड़े और शर्मनाक ढंग से जिंदगी भ लिए अंधा बना दिया. यह आप में एक 'खतरनाक जंगली का की मिसाल है. दुनिया का कोई बुद्धिजीवी ऐसे 'पुलिसराज' की किये बगैर नहीं रह सकता. 'सा भी उस निंदा-स्वर में अपना मिला रही है.

हरिजन कांडों से शुरू हो सांप्रदायिक दंगों का सिल अभी तक जारी है. आज भी देश के नगरों में दंगों के नाम पर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस साल प्रांतीयता और भाषावाद दक्षिण की जगह दूर पूर्व से सिर ठाया है—पूरा असम इसकी चपेट है और देश के अन्य हिस्सों को उसके टके झेलने पड़ रहे हैं. अंतर्राष्ट्रीय गत में गुपचुप शक्ति संतुलन के नये मीकरण, मुद्रास्फीति के भयावह झटके, फगानिस्तान में रूसी हस्तक्षेप, ईरान-राक के झगड़े से विश्व में ईंधन का त्पात...यानी इस फेहरिस्त मात्र से र लगने लगा है.

देश और विदेश के इन हादसों ने बसे ज्यादा तीसरी दुनिया के आम दमी को तकलीफों के भयावह दौर गुजरने के लिए मजबूर किया है. र इन मजबूरियों में जीना हमारी यति हो गया है.

अभी इन पंक्तियों के लिखते-लिखते खबार में पढ़ने को मिला कि राज्य-भा के अध्यक्ष और हमारे देश के उप-ष्ट्रपति श्री हिदायतुल्ला को राज्य-भा के एक वरिष्ठ सदस्य श्री साल्वे उनके 76 वें जन्म दिवस पर भरे दन में इस कदर जलील कर दिया कि अपमानित अनुभव कर सदन छोड़कर ले गये और अप्रत्यक्ष रूप से त्यागपत्र स्थिति में आ गये. इसके ठीक एक न पहले एक अन्य सदस्य उपराष्ट्र-ति को तीन बार 'फ्रॉड' की संज्ञा चुके हैं. यह हमारे यहां के 'अपर हाउस' हे जाने वाले सदन के सदस्यों की मुत 'शालीनता' का प्रमाण है कि मारे उपराष्ट्रपति अपने ही 'सदन' सम्माननीय सदस्यों द्वारा अपमानित कर जन्म दिन का प्रसाद यों पा रहे हैं. गलपुर में कैदियों को अंधा कर दिये ने की खबर सुनकर प्रधानमंत्री दिरा गांधी बोल पड़ी थीं कि आखिर हम जा कहां रहे हैं! 1980 बीतते-बीतते 'अपर हाउस' की इस अपमानजनक घटना से शायद प्रधानमंत्री को यह उत्तर मिल गया होगा कि हम कहां जा रहे हैं. शायद वहां, जहां "अब उजाले भी कहने लगे/एक दिया तो जला दीजिए." अपने मित्र राज इलाहाबादी की ग़ज़ल के इस शेर की गहनता शायद इससे पहले इतनी घनी होकर मेरे मन पर तारी नहीं हुई थी.

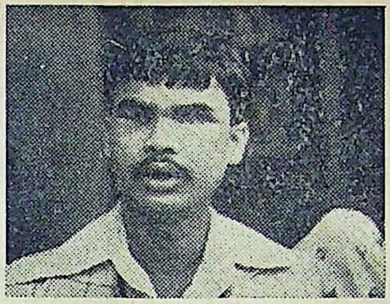

बिहार पुलिस की ज्यादतियों के शिकार—शालिग्राम साह.
● छाया : बनवारी

इन हादसों के सामने रहते हम आने वाले वर्ष की बहुत सुखद भविष्यवाणियां कर भी दें तो झूठ का दामन थामना हो जायेगा, लेकिन आकंठ निराशा में डूबे बने रहने की भी तो स्थिति नहीं है. कर्मठ और संघर्षशील आदमी लगातार निराशा की परिकल्पनाओं में नहीं जी सकता. संघर्षशील आदमी चारों ओर से एक साथ घिरते हुए अंधेरों के बावजूद किसी भी दरार से आ सकने वाली रोशनी की तलाश जारी रखे हुए है और यह तलाश जारी रहनी चाहिए. बगैर इस तलाश के संघर्षशीलता बेमानी है और सही जिजीविषा की ललक खोखली. सारिका का 1980 का यह अंतिम अंक रोशनी की उसी तलाश को अर्पित है.

कन्हैयालाल नंदन

कुणाल की आंखें

यह सही है कि हमारी जिजीविषा मरी नहीं है, हमारी आशा जीवंत और कर्मपरक है, लेकिन जो स्थितियां हैं उन्हें न तो नकारा जा सकता है और न उनकी ओर से आंखें बंद की जा सकती हैं. हमारे पाठक और रचनाकार इन स्थितियों के साथ संवेदना के स्तर पर गहरे जुड़े हुए हैं. इसका सबूत है योगेंद्रदत्त शर्मा की यह गजल जो अंधे किये गये कैदियों के नाम साया की जा रही है. ये आंखें कुणाल की भी हो सकती हैं, पृथ्वीराज चौहान की भी, कैदियों की भी और तकलीफें झेलती हुई समूची इंसानियत की भी. हमारा दर्द, हमारी आवाज और हमारा एहसास इस भावना की गहराई के साथ है.

हम भविष्य की रोशनियों के प्रति आशा के साथ आस्थावान होते हुए भी गये वर्ष के नाम यह गजल समर्पित कर रहे हैं :—

ख़ूं से तर हैं कुणाल की आंखें,
टूटे पर हैं कुणाल की आंखें!

पाटलीपुत्र हो या भागलपुर,
ज़ख्मेतर हैं कुणाल की आंखें!

चल के पूछो अशोक से लोगो,
अब किधर हैं कुणाल की आंखें!

काश! इंसाफ़ भी कहीं होता,
मुंतज़र हैं कुणाल की आंखें!

रोशनी के फ़रेब क्या देखें?
दर-ब-दर हैं कुणाल की आंखें!

आंख कोई उधर नहीं उठती,
अब जिधर हैं कुणाल की आंखें!

इनसे गुज़रो तो कोई बात बने,
रहगुज़र हैं कुणाल की आंखें!

एक गूंगा सफ़र है हम सबका,
हमसफ़र हैं कुणाल की आंखें!

हम नुमाइश में हो गये अंधे,
जलसाघर हैं कुणाल की आंखें!

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पाठकों का पन्ना

ढोल की पोल

'सारिका' नवंबर अंक-2 में कानपुर के भाई विश्वरूप मोइत्रा का पत्र विशेष तौर पर रुचिकर लगा. मोइत्रा की छटपटाहट या पीड़ा दरअसल काबिले गौर है. यद्यपि उनका यह कहना गलत है कि सभी लघुपत्रिकाएं स्पष्ट तौर पर तथाकथित जनवाद का ढोल पीटती पत्रिकाएं हैं या उनके लेखक-संपादक इन पत्रिकाओं के मोटे-मोटे विशेषांकों को पुस्तकाकार रूप में बाइंड करा कर ऊंचे दामों पर बेचते हैं. यहां मेरा मोइत्रा जी से स्पष्ट निवेदन है कि हिंदी में प्रकाशित समस्त लघुपत्रिकाएं न तो तथाकथित जनवाद का ढोल पीटती पत्रिकाएं हैं और न ही उनके लेखक-संपादक आर्थिक रूप से इतने भरे-पूरे हैं कि उनके विशेषांकों को पुस्तकाकार रूप में बाइंड करा सकें. लघुपत्रिकाओं पर ये प्रहार संभवतः समस्त लघुपत्रिकाओं के बारे में न जानने के कारण किया गया है. यह सही है कि कुछ पत्रिकाएं रजिस्टर्ड जनवादी पत्रिकाएं हैं और ये पत्रिकाएं बुर्जुआ लेखकों को (उनकी नजर से) लिफ्ट नहीं देतीं. इनकी अपनी सीमाएं हैं, इनके अपने लेखक हैं, जो शाब्दिक क्रांति में विश्वास रखते हैं, मार्क्स और लेनिन को मसीहा मानते हैं और उनके उसूलों पर चलने से घबराते हैं. कुछ लोग चलते भी होंगे, पर वे शायद बंगाल में ही मिल सकेंगे; पर इतना तय है कि ये लोग क्रिएटिव हैं. जहां तक हिंदी के जनवादी लेखकों का सवाल है, वहां शायद मोइत्राजी का सुबहा सच निकले, क्योंकि अधिकांश फ्रस्ट्रेटेड लेखक जनवादी शिविर में जा मिलते हैं और अपनी भड़ास सिर्फ प्रोपेगंडा करके निकालते हैं. यही वह लोग हैं, जो एक टांग जनवाद पर और एक टांग व्यावसायिक पत्रिकाओं पर रखते हैं. और अपनी तसल्ली व शिनाख्त या कहिए शख्सियत बताने के लिए एक अधकचरी लघुपत्रिका निकालने लगते हैं. और यह देखा जा सकता है कि हिंदी में निकलने वाली अधिसंख्य लघुपत्रिकाएं न जनवादी हैं, न साहित्यिक. वे बस ढोल पीटने वाली हैं. और इस अवसर की ताक में रहतीं हैं कि उनकी चर्चा पूंजीवादी व्यावसायिक पत्रिकाओं के माध्यम से ही की जाये ताकि उन्हें भी अंततः उन्हीं व्यावसायिक पत्रिकाओं का सहारा मिल जाये. मोइत्राजी इन्हीं पत्रिकाओं के संपादकों-लेखकों से पीड़ित हैं, पर यह भी सही है कि जनवादी पत्रिकाएं भी इन लोगों की घुसपैठ से अछूती नहीं हैं. यह उन पत्रिकाओं के हित में होता कि वे ऐसे लोगों से बचतीं, पर हिंदुस्तान का जनवाद अवसरवादियों की गिरफ्त से बच नहीं सका है और अपनी चालों से ये भ्रष्ट लोग जनवाद को ही बदनाम करने पर उतारू हैं. मार्क्सवाद का जो रूप ये जन के सामने रखते हैं वह व्यक्तिपरक अहमन्यता से सराबोर होता है, निश्चित ही है कि प्रगतिशीलता को फ्रस्ट्रेशन के दायरे में कैद कर उसे कठमुल्लेपन की हद तक दुरूह बनाये रखना ही इनका लक्ष्य हो गया है.

रही बात व्यवसायिक पत्रिकाओं की तो उनसे जनरुचि से विमुख होकर छापने की प्रत्याशा करना बहुत बड़ी नासमझी है. आज जरूरत है ऐसे लेखकों की जो सच बोलने की हिम्मत रखते हों. भले ही उन्हें जनवादी या व्यावसायिक कोई मंच स्थान न दे.

▣ **शैलेंद्र चौहान, नांदेड़ (महाराष्ट्र)**

पाप मुक्ति

'सारिका' मेरे जैसे अधिसंख्य पाठकों की अपेक्षाओं को निरंतर पूरा करने में संलग्न है. यह नहीं कहने से पाप लगेगा.

'दीपावली विशेषांक' का 'ज़रिया नज़रिया' स्तंभ झकझोर देने वाला है. इतने कम शब्दों में इतनी सारगर्भित और सामयिक बातें आपके रचनाशील मानस का परिचय देती हैं.

श्री रवींद्रनाथ त्यागी ने आज के हालात को खूब रोशनी दी है. एतदर्थ उन्हें बहुत-बहुत धन्यवाद दें. 'कुरु-कुरु स्वाहा' की आपने बिलकुल नयी शैली में बड़े अनूठे ढंग से 'समीक्षा' प्रकाशित की है.

▣ **प्रभाकर मिश्र, बभनान (गोंडा)**

शिकायत वाप[स]

'सारिका' के अंक 274 (1 से [15] दिसंबर) में मुद्रण की जो भूल (**नामों में फेर**) रह गयी है और जिसके कारण दो ले[खक] प्रभावित हुए हैं, उनमें से एक मैं स्वयं [हूं].

बहरहाल मैं अपनी शिकायत वापस [ले] रहा हूं; क्योंकि अभी कुछ ही दिवस [पहले] मुझसे भी ऐसी ही एक भूल हो गयी [थी] जब मैंने अपनी एक 'लंबी' कहानी '[...] जगतारिणी का आविष्कार' आप[को] विचारार्थ प्रेषित की थी और आपके न[ाम] की जगह लिफाफे पर श्री नंदकिशोर न[...] लिख दिया था.

▣ **विमल विश्वास, मुजफ्फरपुर**

निवेदन : भुवनेश्वर

प्रख्यात नाटककार भुवनेश्वर की रचनात्मकता जितनी निर्विवाद है, उनका व्यक्तित्व उतना ही विवादास्पद रहा है. अतएव उनके संपूर्ण व्यक्तित्व एवं कृतित्व को सामने लाकर उसका तटस्थ मूल्यांकन करने के ध्येय से शीघ्र ही एक पुस्तक 'भुवनेश्वर' प्रकाशित की जा रही है.

जिन महानुभावों के पास भुवनेश्वर से संबंधित कोई भी सूचना, संकेत, उनका प्रकाशित या अप्रकाशित साहित्य, पत्राचार, चित्र या इसी प्रकार की कोई अन्य सामग्री उपलब्ध हो तो कृपया उसे निम्न पते पर भेजने या सूचित करने का कष्ट करें—

चंद्रमोहन दिनेश, रोशनगंज, शाहजहांपुर-242001

नयी घटना नहीं, सहज घट[ना]

'सारिका' अंक 270 पढ़ा. कमलादा[स] की 'मेरी कहानी' पढ़ने के बाद मन [...] हो गया. मासिक धर्म का उन्होंने [...] उत्तेजित ढंग से वर्णन किया है, मात्र पु[...] को बेचने के लिए! प्रत्येक नारी [...] नारीत्व पाती है, तब मासिक धर्म की [...] ही प्रक्रिया होती है, कोई नयी घटना [...] कमलादास के साथ घटी नहीं.

▣ **के.ए. दुबे 'पद्मेश,' कानपुर**

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नर्यात के माल की मंडी

'मेरी कहानी' पर **रवींद्र कालिया** का आक लेखकीय नजरिया प्रकाशित करने धन्यवाद.

'मेरी कहानी' पढ़ने पर लगा कि लेखिका मलादास की तमाम हरकतों के पीछे क लिजलिजी कामुकता के सिवाय और ई दर्शन नहीं प्रतिबिंबित होता है. इस ह उनकी कहानी एक कामुक औरत की ोग से समाधि की यात्रा की कहानी है. मैं परंपरावादी नहीं हूं, परंतु 'केवल र्यात के लिए' निर्मित ऐसी कृतियों के ी मंडी में प्रयोग के खिलाफ जरूर हूं.

औरत अपने बड़े दादा को अपनी ी की उत्तेजक मांसलता का गुलाम ती हो, सारी जिंदगी अपने को जांघों र वक्षों की मांसलता में गुदगुदाती उसे दूसरों को 'भूखे भड़िये' की उपाधि से पहले स्वयं की भूख का निरीक्षण ना चाहिए.

अशोककुमार तिवारी, वाराणसी

र्यात ही बेहतर

'मेरी कहानी' की ओर आपका ध्यान कृष्ट करना चाहता हूं. भगवान जाने यह मती **कमलादास** की सच्चाई है या गढ़ंत? कुछ भी हो, लेकिन यदि इसे र्यात करने के खयाल से' लिखा गया तो अवश्य ऐसा किया जाये, क्योंकि हमारे किसी भी काम की नहीं है.

अनिलकुमार 'अनल', सहरसा, बिहार

री कहानी' का दूसरा पहलू

'मेरी कहानी' **कमलादास** पर **रवींद्र** लिया का लेख पढ़ा. लेखक ने कमलादास कमात्र कामुकता के पहलू को ही अधिक गर किया है. कामवासना प्रत्येक प्राणी प्रकृतिदत्त है, यह तो लेखिका की गोई और स्वतंत्र लेखन है कि उन्होंने किसी रहस्य को नहीं छिपा रखा, कि विरले ही कर सकते हैं. रहा सवाल वसायिक लेखन का तो यह पाठकों निर्भर करता है कि पुस्तक पढ़ें वा नहीं. क्या लेखक 'मेरी कहानी' आलोचनात्मक लेख लिखकर और के सेक्स प्रसंगों को उभारकर व्याव-यकता हासिल नहीं कर रहे? 'मेरी कहानी' की मद्रासी फिल्म से तुलना करना पुस्तक को घटिया करार देना है. यद्यपि इसमें भाषागत प्रदूषण हैं, किंतु वह अश्लील साहित्य की तरह नहीं बल्कि जिंदगी की वास्तविकता है.

उच्च मध्य परिवार में जन्मी लेखिका का किशोरावस्था से ही साहित्यिक सृजन निष्कपट व्यक्तित्व, जीवंत प्रकृति-चित्रण 'मेरी कहानी' में समाहित है. गरीबों, असहायों के प्रति लेखिका का हृदय करुणा से भरा है. लेखिका के अनुसार **'क्यों ऐसा कोई सरकारी आदेश जारी नहीं किया जाता कि सब बड़ी-बड़ी इमारतों के नीचे के हिस्से तेज बरसात और सर्दी की रातों में बेघरबार लोगों के लिए खोल दिये जायें, हर होटल वाले को अपनी दैनिक आय का दस प्रतिशत भाग गरीबों को भोजन कराने में खर्च करने को मजबूर कर दिया जाये.'**

नैतिकता का बाना पहने अनैतिक समाज के तथाकथित समृद्ध और राजनीतिक लोगों को भी लेखिका ने लताड़ा है. लेखिका का सांसारिकता के बारे में कहना है कि **'वास्तविक संसार वह नहीं होता, जो बाहर से दिखता है. असली दुनिया तो उसके भीतर होती है, जो किसी भी तरह नापी नहीं जा सकती, लेकिन उसे सिर्फ वही महसूस कर पाता है, जो अपने भीतर डुबकी लगा कर अपने अनंत आपे को पहचानने की कोशिश करता है.'**

▣ प्रमोद कु. पाठक, काशीपुर (नैनीताल)

ईद अंक क्यों नहीं?

'सारिका' के विशेषांक निस्संदेह पठनीय होते हैं. काफ्का अंक, प्रेमचंद अंक, मंटो अंक, चेखव अंक, हेमिंग्वे अंक आदि-आदि. और अब 'सारिका' का दशहरा अंक भी पसंद आया, परंतु आपकी एक बात बिलकुल पसंद नहीं आयी——19 अक्तूबर को दशहरा था, ठीक दूसरे दिन यानि 20 अक्तूबर को मुस्लिम भाइयों की ईद (बकरा ईद) थी. दोनों बड़े त्योहार इतने कम अंतर पर होने के बावजूद आपने केवल 'दशहरा अंक' निकाला. क्या 'ईद अंक' नहीं निकाला जा सकता था? क्या ही अच्छा होता, यदि आप 'दशहरा-ईद संयुक्त विशेषांक' ही निकालते. 'सारिका' के लेखक व पाठक मुसलमान भी हैं. फिर यह पक्षपात क्यों?

▣ जुल्फिकार अहमद, बीकानेर

ट्रेलर तो देख लिया

आत्मस्वीकृत्यात्मक लेखन में अमृता प्रीतम के बाद एक और नाम कमलादास है, लेकिन जहां अमृता प्रीतम का 'रसीदी टिकट' किसी भी अर्थ में प्रसिद्धि का मोहताज नहीं, वहीं कमलादास का मूल उद्देश्य ही चौंकाने वाले बाजारू साहित्य की रचना कर सस्ती लोकप्रियता हासिल करना रहा है. लेखिका की साफगोई एवं बेबाकी का कायल हुआ जा सकता है, किंतु यथार्थ के नाम पर नग्नता, कुरूपता एवं भोंड़ापन पाठक में जुगुप्सा ही जगा पाता है.

रवींद्र कालिया की टिप्पणी के रूप में 'मेरी कहानी' का ट्रेलर ही देखा है, पूरी फिल्म देखने का धैर्य संवेदनशील पाठक जुटा पायेंगे, इसमें संदेह है.

▣ संतोष व्यास, सुजानगढ़

क्यों छापते हैं ऐसी कहानियां

'सारिका' अंक 270 में **मुद्राराक्षस** की कहानी 'हम सब मंसाराम' और **बीर राजा** की कहानी 'खुले जंगले का शेर' ऊपर से व्यवस्था विरोधी कहानी लगने के बावजूद भी व्यवस्था को और मजबूत बनाने की कहानियां बन गयी हैं. पलायन बीर राजा की कहानी का संदेश है और वही संदेश 'हम सब मंसाराम' का भी है कि सामंतों, जालिमों के आगे आम आदमी टिक नहीं सकता, अतः उनसे लड़ने की बजाय उनके आगे समर्पण कर देना चाहिए. समझ में नहीं आता कि 'हम सब मंसाराम' और 'खुले जंगले का शेर' जैसी यथार्थ से कटी, व्यवस्था-पोषक और आम आदमी के संघर्ष की धार को कुंद करने वाली कहानियों को प्रकाशित कर 'सारिका' पाठकों को कौन-सा संदेश देना चाहती है?

▣ डॉ. राम बहादुर वर्मा, रायबरेली, उ.प्र.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

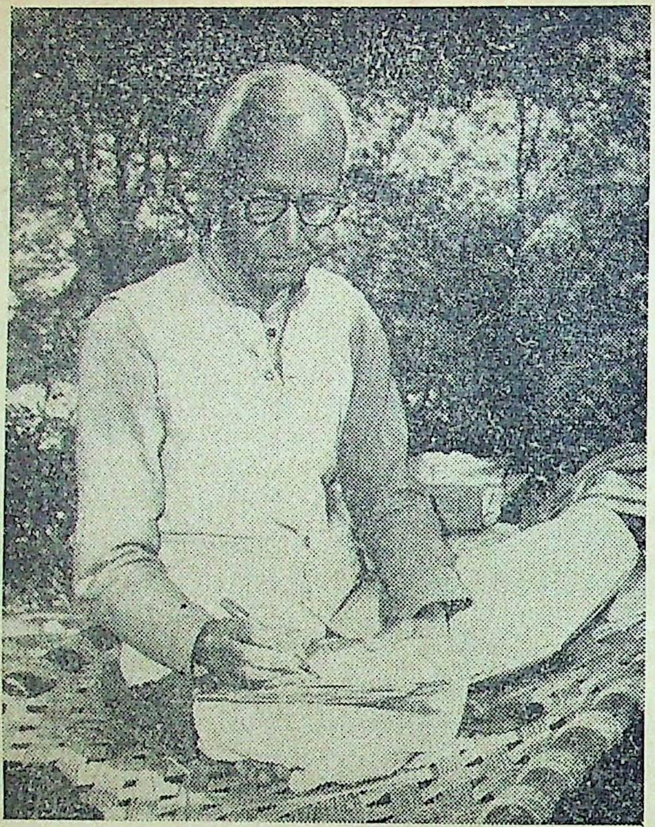

साक्षात्कार

"व्यक्तित्व नहीं, चरित्र और कार्य ही समाज के काम की वस्तु हैं!"

▣ रावी

रावी कब जन्मे, यह जानना और सोचना फिज़ूल लगता है, क्योंकि जिस व्यक्ति की उंगलियों पर उनकी उम्र के साल गिने जाते हैं, वही उनका अधिनायक भी है––उनकी अंतरंग टीम का कप्तान! बहरहाल, उन्होंने लगभग सोलह साल की उम्र में सन् 1928 के आसपास लिखना शुरू किया––कविता, गज़ल, कहानियां, नाटक, लघुकथाएं और उपन्यास सभी कुछ लिखा. आजकल नयी पीढ़ी में वह मुख्यतः लघुकथाकार के रूप में जाने तथा माने जाते हैं और सब आदर से उन्हें 'लघुकथा का पितामह' कहकर उनका सम्मान करते हैं.

शहरी और दुनियावी हुजूम से दूर 1947 में युवावस्था में ही यमुना किनारे एक टुटहा-से गांव कैलास में जा बसे थे. इस बीच उनका जीवन अध्यात्म में रच-बस गया. इसी क्रम में उन्होंने तीन काम किये––नये विज्ञापन (पत्रिका) का प्रकाशन-संपादन, मैत्रीक्लब और फिर जीवन प्रवेश विद्यालय की स्थापना.

इन तीनों अध्यात्मिक माध्यमों ने काफी लोगों को आकर्षित किया है, मगर अधिकांश लोगों की समझ में नहीं आया कि वे क्या करना चाहते हैं. तिस पर तुर्रा यह कि उन्होंने एक उपन्यास लिखा––'नया नगर की कहानी' और इन दिनों वे ठीक उपन्यास में वर्णित नगर को कैलास ही में साकार करने की कोशिश कर रहे हैं.

रावी से जगवीरसिंह वर्मा की लंबी बातचीत

आगरा छोड़कर यहां कैलास में बसने के पीछे क्या कुछ का रहे थे?

हां, 1946 में दरअसल शहर में ऐसी घटना घटी, जिसने मुझे समाज विरक्त कर दिया और इस तरह मैं 2 फरवरी, सन् 1947 को एक ऐसे में आ गया, जिसकी आबादी भी घनी थी.

वह ऐसी कौन सी घटना थी, जि आपके जीवन को इस हद प्रभावित किया?

प्रेम की घटना थी वह. दरअसल, मकान में मैं रहता था, उसी में और परिवार रहते थे. उनमें से एक परि की नवविवाहिता महिला से मुझे प्रेम गया था. जिसे गलत समझा गया और तरह मेरा वहां रहना दूभर हो गया इसके कुछ ही समय पूर्व समाज में संबंधों के निर्माण के प्रति मेरी रुचि थी. फिर तो यह चिंतन और भी गहर मेरी 'बीच की दीवार' शीर्षक कहानी घटना पर आधारित है.

जिन परिस्थितियों में आपने सा का दामन थामा, वे आपके पला वादी होने का आभास देती इसलिए जानना चाहूंगा कि सा के काम को आपने किस रूप समझा.

साहित्य का काम बहुआयामी है. मैं मानता हूं कि साहित्य का अभिप्राय सृजन है, लेकिन इसके साथ ही साथ म की मनोभूमि को परिष्कृत कर उसमें से बड़े छायादार और फलदार उगाने की प्रेरणा भी हो, जो म को उसकी उच्चतम स्थिति तक पहुं भरपूर रस और प्रश्रय के साथ. किस किसी रूप में और किसी न किसी स्तर मनुष्य के भीतर एक नयी चेतना यानी अपने हित के प्रति उसकी पहचान और परख बढ़े, और जिसमें वाह्य चेहरे का ही प्रतिबिंब न झलके,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

...सके विकास का पूरा चित्र दिखाई दे. ...मोबेश मैंने अपने लेखन में यही प्रयत्न ...या है.

आपने संदेश तथ्यात्मक या तात्विक प्रधान किस्म की लघुकथाएं ही लिखना क्यों पसंद किया?

...योंकि इनके माध्यम से वह संकेत अधिक ...म और ग्राह्य रूप में दिये जा सकते हैं.

कुछ नये लेखक लघुकथा और लघु-कहानी को दो अलग विधाएं मानते हैं, आपका क्या खयाल है?

...घुकथा मूलतः प्रतीकात्मक और संदेश-...र्मी होनी चाहिए, उसमें घटना और कथो-...कथन न्यूनतम हो—मेरी दृष्टि में यही ...घुकथा है. लघुकहानी कोई अलग विधा ...ीं है, यह केवल मात्र विशेषण है.

लघुकथा लेखन के पीछे किस देशी-विदेशी लेखक की प्रेरणा रही आपको?

...सी की नहीं. मैंने पढ़ा ही बहुत कम है, ...ा ही नहीं रही ज्यादा कुछ पढ़ने की. ...र फिर लघुकथाएं तो मैंने बाद में ...खनी शुरू कीं. पहले तो मैंने लंबी ...ानियां ही लिखीं. लघुकथा लिखने से ...ले तो मेरे छह कहानी संग्रह निकल ...के थे.

'पचास परचे इरा क्लब के' नामक उपन्यास में आपने पचासवें पर्चे में धनंजय द्वारा वीरभद्र को लिखे गये पर्चे के अंतर्गत यशपाल, जैनेंद्र, विष्णु प्रभाकर से लेकर अमृतलाल नागर तक सत्ताइस लेखकों के नामों के साथ उनके अंतरंग की भी संक्षिप्त झलक दी है, इसके बाद उसी सूची का चालीसवां नाम अज्ञेय जी का है, बाकी इन दो (अमृतलाल नागर तथा अज्ञेय) के अंतरंग की झलक नहीं है और बाकी 12 लेखकों के नाम ही नहीं हैं. यदि हम इसका कोई आध्यात्मिक और वास्तविक अर्थ मानें तो क्या आप अब उन बारह लेखकों के नामों पर प्रकाश डालने की कृपा करेंगे?

सूची को पढ़कर जो लेखक सोचते हों उसका नाम भी रीना के सिरहाने दबे कागजों में होना चाहिए, अधिक संभावना है कि उनके नाम उस सूची में आ गये हों. और लेखक के प्रमाद अथवा रीना की ज्यादती या आलस्य के कारण प्रकाश में न आ पाये हों.

यहीं पर कनु की राय (जैसा कि अब स्पष्ट हो ही गया है कि कनु या कनिष्ठ तनु माने रावी की राय) में यह चालीस भी निश्चित रूप से हिंदी के सर्वश्रेष्ठ कथाकार नहीं हैं तो सर्वश्रेष्ठ कथाकार और कौन से हैं?

क्योंकि मैं सर्वश्रेष्ठ कथाकारों की सूची बनाने के लिए उपयुक्त जज नहीं हो सकता हूं. इसलिए यह बात मुझे कहनी पड़ी है, यह नाम वस्तुतः एटरेंडम ही लिये गये हैं.

आपके पात्रों उज्जवल, त्रिलोचन से लेकर स्नेहशिखा और नीतराग, वातायन वगैरह को लेकर काफी दिन से विवाद चल रहा है कि वे सशरीर हैं या अशरीर या एकदम काल्पनिक. आपसे पूछा जाता है तो आप कह देते हैं कि वे सब सदेह विद्यमान हैं, आप उनसे व्यक्तिगत संपर्क का आमंत्रण भी देते हैं, मगर जब कोई वैसी इच्छा प्रकट करता है तो आप कोई तरकीब नहीं बताते. आखिर, आप इस तरह की रहस्यभरी बातें क्यों करते हैं?

वक्तव्य मेरा यही है कि वे सदेह हैं, किंतु उन्हें मेरे पाठक सदेह मान ही लें, यह न आवश्यक है और न उनके अस्तित्व को प्रमाणित करने का मेरे पास कोई साधन है. दो-चार जन्म तक प्रतीक्षा करने की जिसमें रुचि हो, वह उन्हें प्रत्यक्ष देखने की दिशा में अग्रसर हो सकता है. उनका व्यक्तित्व नहीं, उनका चरित्र और कार्य ही समाज के काम की वस्तु है और यही पर्याप्त है.

इस उम्र में आकर बहुत से लेखक आत्मकथा लिखने लग जाते हैं या वैसा सोचने लगते हैं. आपने भी कभी इस बारे में सोचा है?

आप अपनी ही आत्मकथा लिख डालिए, वह मेरी ही आत्मकथा होगी. हर व्यक्ति की कथा, जिसके लिए आत्मकथा हो, वह अपनी अलग आत्मकथा लिखने की बात कैसे सोच सकता है?

आपातकाल को विनोबाजी ने 'अनुशासन पर्व' कहा था. . .आप भी अध्यात्म से गहराई से जुड़े हैं, इसलिए जानना चाहूंगा कि आपका इस बारे में क्या खयाल है?

अध्यात्म से जुड़ा हूं या नहीं, लेकिन जीवन से अवश्य जुड़ा हूं. आपत्ति मेरी दृष्टि में सदैव अनुशासन की प्रेरिका और किन्हीं नयी उपलब्धियों में सदैव सहायिका होती है. उस काल में जो आपत्ति थी, वह सत्ता से ताल्लुक रखती थी, जीवन से नहीं. इसलिए कुछ भी कहना फिजूल के विवाद को पैदा करना है.

'नये विज्ञापन' और 'मैत्रीक्लब' के माध्यम से आप मांग और पूर्ति को लेकर एक लंबे अर्से से प्रयोग कर रहे हैं, लेकिन प्रायः यह देखा गया है जीवन व्यवहार में कि जब भी कोई आदमी दूसरे के सामने अपनी कोई मांग रखता है, तुरंत वह अपना मूल्य घटा बैठता है. इस मानसिकता के पीछे कौन से मनोवैज्ञानिक कारण है?

जिससे मांगा जाता है, उसकी हीन, संकीर्ण और छिछली दृष्टि? . . . मांगने वाला यदि अपनी अंतरंग हैसियत को पहचानता है तो जिससे मांगता है, उस पर एहसान ही करता है. शेर अर्ज है—"आपसे वाबस्ता हैं रावी की कुछ खुदगर्जियां, ये भी मुमकिन है ये उसका आप पर एहसान हो!"

आप अपने उपन्यास 'नये नगर की कहानी' की कल्पना को साकार करने की दिशा में भी संकल्पशील हैं. अभी तक इसमें आपको कहां तक सफलता मिली है यानी वैसा नया नगर कब तक बस जायेगा?

आप देख ही रहे हैं कि 'नये नगर' के लिए जमीन मिल गयी है और स्वामी असीमानंद बिल्कुल वेंकटाचलम (उपन्यास का नायक) के रोल को अदा कर रहे हैं. मैत्रीक्लब के ही एक अन्य मित्र 'बजरंग' का रोल अदा करने के लिए कटिबद्ध हैं. खाद्यान्न की शुरुआत कई वर्ष पहले आपने एक क्विंटल गेहूं का दाम देकर कर दी थी, और भी कुछ मित्र साधन और सुविधाएं जुटाने की दिशा में अग्रसर हैं. इस सबसे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आपको भी यह पक्का यकीन होना चाहिए कि 'नया नगर' बस कर जरूर रहेगा. कम से कम 5 वर्ष और ज्यादा से ज्यादा 250 वर्ष के बीच.

आपके साहित्य से लेकर बातचीत तक रहस्य ही रहस्य भरा पड़ा है. आज के सामान्य जन-जीवन के व्यवहार में यह पचने वाली बात नहीं लगती?

रहस्य आप किसे कहते हैं? कल सुबह जो नाश्ता आपको यहां मिलने वाला है, क्या वह रहस्य नहीं है और उस नाश्ते के समय जो भाव और विचार आपके मन में उठने वाले हैं, क्या वे अभी आपके लिए रहस्य नहीं हैं? जो सुखद कल्पना घटित हो जाये और समझ में आ जाये, उसे आप रहस्य की संज्ञा दे दें तो मेरी रहस्यवादी अभिव्यक्ति में किसी को कोई एतराज या परेशानी नहीं होनी चाहिए.

नये, अधिक विकसित और सुखी मानव समाज की कल्पना अनेक प्रसिद्ध कलाकारों और चिंतकों ने की है और कुछ भविष्यदर्शी माने जाने वाले व्यक्तियों ने भी उसके चित्र विश्व के साहित्य को दिये हैं. प्लेटो का 'रिपब्लिक', सर थामस मूर का 'यूटोपिया,' विलियम मौरिस का 'न्यूज फ्राम नोहेयर,' सेमुएल बटलर के 'इरेह्वान' का उल्लेख आपने अपने उपन्यास 'नये नगर की कहानी' की भूमिका में किया है. क्या आपने इन लेखकों की इन रचनाओं को पढ़ा है?

इतना बड़ा बोझ उठाने की समाई मुझमें कहां? मैंने तो अपने एक मित्र प्रोफेसर से कहा कि कुछ ऐसे अंग्रेजी के लेखकों की कृतियों के नाम बताइए, जिन्होंने 'यूटोपिया स्तर' की कही जाने वाली चीजें लिखी हों. बस, मेरे मित्र भटनागर जी ने मुझे यह नाम लिख दिये और मैंने अपनी भूमिका में लिख लिये.

आपकी दृष्टि में 'वीरभद्र' और 'स्नेहशिखा' विश्व भर के साहित्य में कैसा स्थान प्राप्त कर सकते हैं?

विश्वसाहित्य के सर्वोत्तम पात्रों की श्रेणी में उनका नाम आ जाये तो मुझे कोई आश्चर्य नहीं होगा.

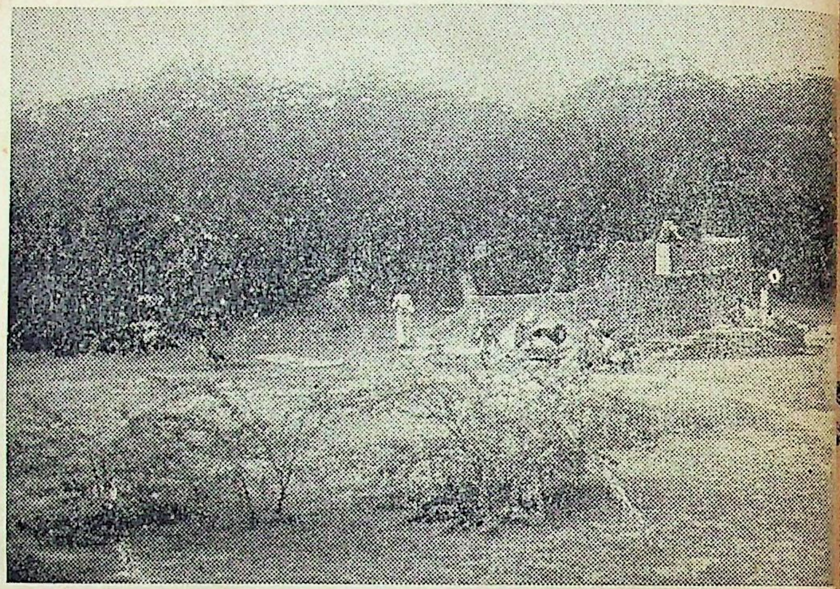

उपन्यास के माध्यम से देखा हुआ सपना--रावी के उपन्यास 'नया न[...] की कहानी' के मूर्तरूप 'नया नगर' के प्रारंभिक निर्माण का चित्र

आपने पहले कभी मुझसे लेखन के लिए एकांतता और एकाग्रता की बात कही थी. आज के समय में वह सब कहां संभव है? तो क्या यह मान लिया जाना चाहिए कि नयी पीढ़ी जो कुछ लिख रही है, वह उतना गहरा, शाश्वत और लोकोपयोगी नहीं है?

मेरा खयाल है कि नये लेखक के सभी बक्सों की तलाशी ली जाये तो वैसा अवकाश उनके पास अवश्य दबा-ढका निकल आयेगा. अनेक नये लेखकों का भविष्य बतायेगा कि वह अवकाश उनके पास पर्याप्त था. सब कुछ--संभव है और सुगम है. हां, गहराई और शाश्वतता के लिए ग्राहकता एवं कर्म के प्रति समर्पण भाव तो चाहिए ही.

आप अपनी तात्विक लघुकथाओं के कथानक किस तरह प्राप्त करते हैं? क्या आपने कुछ वैदिक और औपनिषदिक साहित्य पढ़ा है?

वैसा साहित्य पढ़ा तो बिलकुल नहीं[...] लगता है, मुझे भी वहीं से यह प्लाट मि[...] हैं, जहां से उपनिषदकारों को मिले [...] यह कोई बढ़की बात नहीं. मैं सम[...] हूं कि हर कोई ध्यानस्थ होकर ऐसे जि[...] चाहे, कथानक पखेरुओं को आ[...] से पकड़ सकता है?

आप प्लाट बेचते भी हैं?

हां, बेचने की कभी कोशिश की थी, [...] कोई ग्राहक हाथ नहीं लगा. अब तो [...] बांटने को भी तैयार हूं.

आप अपनी रचनाओं को अं[...] रूप देने तक कितनी बार लिखते[...]

लिखता तो एक ही बार हूं, कभी-[...] कुछ शब्दों का उलटफेर और पर्याय[...] अवश्य करना पड़ जाता है. इसी [...] में कुछ नये शब्द भी गढ़ जाते हैं[...]

आपने हिंदी साहित्य को नये शब्द भी दिये हैं?

मैंने साहित्य को नये शब्द दिये हैं या सा[...] ने मुझे, यह विवादास्पद है. मेरा खया[...] कि इसमें दूसरी बात ही अधिक ठी[...]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पुस्तकालय 40584 गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय हरिद्वार

रावी के साथ साक्षात्कार कर लेने के बाद अब प्रस्तुत हैं उनकी चार लघुकथाएं

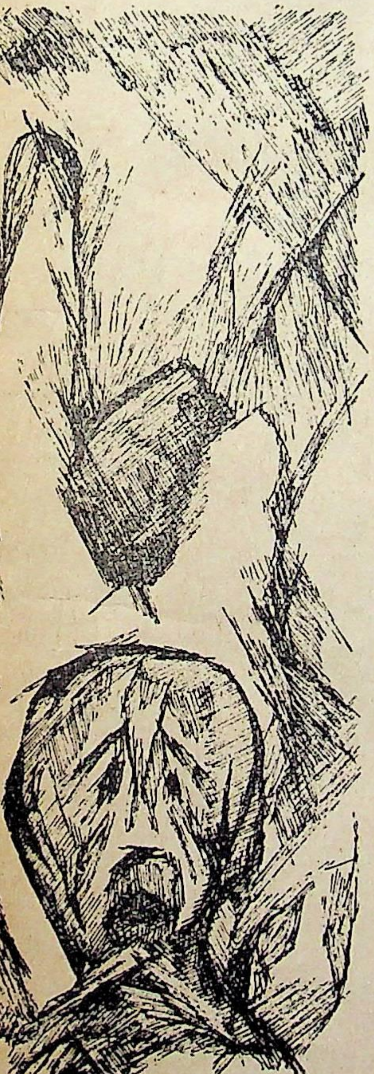

आदमी का नुस्खा

प्राचीन युग में एक बार देव और असुरों का संग्राम बढ़ते-बढ़ते भूलोक तक आ पहुंचा. देवताओं की प्रकृति और स्वभाव के अनुकूल होने के कारण मनुष्य तुरंत ही देव-पक्ष में सम्मिलित हो गये और पशुओं का वर्ग ही पृथ्वी पर ऐसा शेष रह गया, जिसे असुर-जनों को अपने दल में लेने के लिए विवश होना पड़ा. मनुष्य शरीर-बल में पशुओं से हीन होते हुए भी अपनी बुद्धि और मानवत्व के कारण अधिक समर्थ थे. इस प्रकार भूलोक के बटवारे में असुर-जन देवताओं की तुलना में घाटे में ही रहे. इस बटवारे के पश्चात् देवासुर-संग्राम में असुरों की विजय के अवसर बहुत घटकर पराजय के अवसर बहुत बढ़ गये.

असुरों ने मनुष्यों को देवताओं के वर्ग से तोड़कर अपने वर्ग में मिलाने के लिए भांति-भांति के प्रलोभन उन्हें दिये, किंतु उन्हें इसमें तनिक भी सफलता न मिली. बार-बार की पराजय से जब असुरों के हाथ-पांव फूलने लगे, तब अंत में उन्होंने अपने गुरु शुक्राचार्य की शरण ली.

उनकी संकट-कथा सुनकर शुक्राचार्य ने ध्यान के निमित्त अपनी एक आंख बंद की. कहते हैं कि दूसरी आंख बंद करने का कोई प्रश्न ही नहीं उठ सकता था. और तीन पल के भीतर ही ध्यान से निवृत्त होकर उन्होंने आंख खोल दी. असुर-जनों को उन्होंने सांत्वना देते हुए कहा, "मनुष्य जन आपके पक्ष में सम्मिलित होने को उद्यत नहीं हैं तो न होने दीजिए. मनुष्य के निर्माण का योग (नुस्खा) मैंने अभी-अभी खोज लिया है और आपके दल में सम्मिलित पशुओं में से ही जितने की आपको आवश्यकता होगी, उतने मनुष्य मैं बना दूंगा."

और सचमुच स्वल्पकाल के भीतर ही शुक्राचार्य ने बारह अरब पशुओं में से छांटकर सात अरब मनुष्य रूप में परवर्तित करके, सात अरब नवनिर्मित मानवों को असुरों के पक्ष में खड़ा कर दिया; जबकि देवताओं के पक्ष में कुल वास्तविक मानवों की संख्या केवल तीन अरब ही थी.

इसके पश्चात असुरों की पहली बड़ी विजय के उपलक्ष्य में जो बड़ा उत्सव-समारोह हुआ, उसमें शुक्राचार्य ने पशुओं को मनुष्यों में बदलने का वह आश्चर्यजनक नुस्खा भी सबके सामने प्रकट कर दिया. यह चतुःसूत्री बहुत सरल और आसान था. नुस्खा इस प्रकार था:

प्रथम सूत्र : पशु का शारीरिक आकार मनुष्य के आकार में बदलो. (आकार बदलने की यह कला छोटे से छोटे असुर को भी आती थी.)

द्वितीय सूत्र : पशु हृदय के सातवें (नीचे की ओर से चलकर) पटल पर जो भय की प्रवृत्ति है, उसे सबसे भीतरी प्रथम पटल पर ले जाओ.

तृतीय सूत्र : पशु हृदय के सबसे प्रथम (सबसे निचले) पटल पर जो छल-कौशल का पुट है, उसे ऊपर के सातवें पटल पर ले आओ.

और निस्संदेह इस नुस्खे से पशु का जो मनुष्य बना, वह अत्यंत शिष्ट, मृदुभाषी, दूसरों का चुपचाप गला काटने में निपुण और आज की सभ्यता के अनुरूप एक पूर्ण सभ्य मनुष्य था.

इस कथा को कोई आज की मनुष्य जाति का अनादर-अपमान न समझ बैठे, इसी के स्पष्टीकरण में मेरे कथागुरु की टिप्पणी है कि प्रस्तुत युग का मनुष्य उन वास्तविक मनुष्यों और पशुओं से बनाये गये मनुष्यों की सम्मिलित संतान है और जो भी मनुष्य इस तथ्य को अपने भीतर देखकर स्वीकार करने के लिए उद्यत हो जाता है, वह किसी शुद्ध मानवीय विधान के अनुसार द्रुत गति के साथ; अपने शुद्ध मानवत्व की ओर अग्रसर होने लगता है. □

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

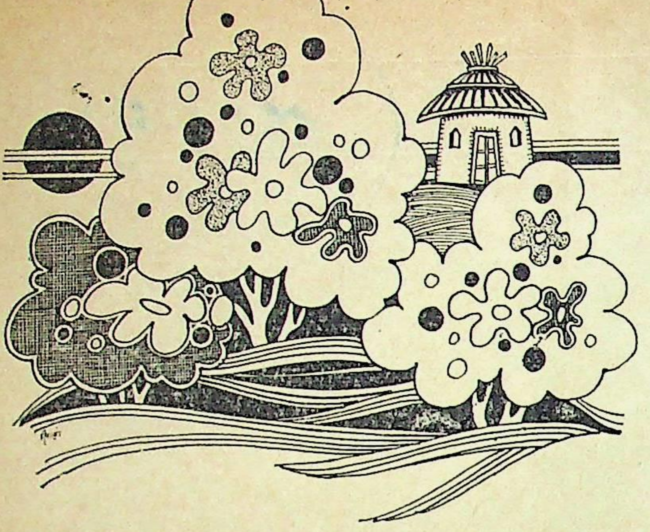

साधना का अंत

साधना की अनेक मंजिलें पार करते हुए अंत में मैंने अपनी अभीष्ट सिद्धि को प्राप्त कर लिया. स्वर्ग,अमरत्व और मोक्ष की कामनाओं से भी अनाकर्षित, मेरी एकमात्र कामना अपने परम आराध्य प्रियतम भगवान के साक्षात दर्शन की ही थी. लोचनाभिराम घनश्याम भगवान के दर्शन के आगे कोटि-कोटि स्वर्गों और मोक्षों के सुख को संत जनों ने न्यौछावर कर दिया था और मैंने भी उन्हीं की परिपाटी का अनुशीलन किया था. मेरी अखंड एवं अविचल अनुराग साधना के वशीभूत होकर भगवान अपने साकार रूप में मेरे सामने प्रकट हो गये. उन्मत्त उल्लास से मैं नाच उठा. भगवान नाम के कीर्तन की अजस्र धारा मेरे मुख से फूट पड़ी. अथक नृत्य-गति से मेरे पग धरती को नाप चले. सहस्रों भक्तों की भीड़ मेरी कीर्तन ध्वनि की अपने कंठों से आवृत्ति करती और मेरी नृत्य-गति पर झूमती मेरे पीछे चल पड़ी. मैं अपने युग और देश का भक्त-शिरोमणि संत घोषित कर दिया गया.

और अंत में कह नहीं सकता कि कितनी धरती और कितने काल की यात्रा के पश्चात् मेरे पग रुके, कंठ-स्वर थमा और उस असाधारण अननुभूतिपूर्व स्थिरता एवं नीरवता के क्षण में असंख्य वर्षों का पुरातन एक युग अनायास ही खिंचकर मेरे सामने प्रस्तुत हुआ. मैंने देखा, एक मोटा चूहा गेरू की एक छोटी डली मुख में दबाये उछलता-कूदता भागा चला जा रहा है. और उसके पीछे सहस्रों छोटे और कृशकाय चूहों की एक भीड़ लगी जा रही है, अग्रगामी मोटे चूहे का भयभीत अभिप्राय यही है कि उसे कोई अत्यंत सुस्वाद खाद्य-प्रदार्थ मिल गया है और उसे दूसरे सब से बचाकर वह किसी सुरक्षित स्थान में भाग जाना चाहता है और उसके पीछे लगे हुए चूहों की भीड़ उस पदार्थ में अपना भी कुछ भाग लगाने के लिए आतुर दौड़ रही है.

उसी क्षण की नीरवता में मैंने सुना :

"असंख्य वर्षों के पुरातन एक युग में मूषक शरीर में जन्म पाकर तुमने जो कुछ किया था, ठीक वही मानव सुलभ किंचित परिवर्तित रूप में इस समय भी कर रहे हो"

अपना प्रगतिशील नर्तन-कीर्तन मैंने उसी समय समाप्त कर दिया, किंतु मैंने देखा, मेरे अनुगामी भक्तजन मेरे बिना भी नर्तन-कीर्तन के उस पथ पर बढ़ते ही गये. भक्तशिरोमणि संत के पद से च्युत होकर ही मैं अपनी उस पुरातन मूषक गति से भी कुछ मुक्त हो पाया हूं और मेरी संघर्षमयी साधनाओं का भी अंत निकट आ गया है.

कथा कहने का अधिकार मेरा है और यदि उसे सुन लेने में इस समय आपको कोई आपत्ति नहीं हुई तो उसके भीतर एक खन नीचे उतरना भी संभवत: किसी समय आप स्वीकार कर लेंगे. मेरे कथागुरु का संकेत है कि मनुष्य के ऊंचे-ऊंचे आनंदोल्लास की परिभाषा इस कथा में निरापद रूप से खोजी जा सकती है. □

नया लक्षण

किसी नगर में एक परम तेजस्वी आया. उसके तेज पांडित्य चुंबकीय आकर्षण ने सारे नगर का अपनी ओर आकृष्ट कर लिया. से लोग उसके भक्त हो गये.

उसके व्यक्तित्व से प्रभावित सभी लोग थे, धीरे-धीरे नगर चर्चा फैल गयी कि वह जीवन स्थितिप्रज्ञ परमहंस महात्मा है. प्रवचनों में वह इन परम गतियों को हुए पुरुषों के लक्षण श्रोताओं को ब था.

वे लक्षण बहुत ही कुछ उस पर होते थे.

कुछ समय पश्चात किसी गुप्त वि वर्ग के प्रयत्नों से उस साधु की कुछ नै आचरिक पोलों का पता चला. बातों में रुचि रखनेवाले खोज व्यक्तियों ने उन कथित आरोपों के में छान-बीन की और उन आरोपों किसी सीमा तक सच पाया.

यह स्पष्ट हो गया कि उस साधु कहनी और करनी में बहुत अंतर है उसका बहुत कुछ दिखावा आडंबर की पर स्थित है.

▣

साधु की इन पोलों की चर्चा धीरे नगर में फैल गयी और उसके बहुत से और प्रशंसक उससे विमुख हो गये. उ लौकिक समृद्धि के साथ-साथ उसके का तेज धीरे-धीरे बहुत घटता गया उदरपूर्ति के लिए उसे नगर में फे लगाने पर उतर आना पड़ा.

साधु का मान दिनों-दिन नगर गिरता गया और यह नौबत आ गयी उसे भिक्षा द्वारा भर पेट अन्न प्राप्त कठिन हो गया.

अब उसने छोटी-छोटी मजदूरी और टहल के काम करके अ पेट भरना प्रारंभ कर दिया. धीरे उसकी स्थितिप्रज्ञता और जीवन का उपहास करना भी नगरवासी भूल और वह नगर का एक उपेक्षित, निम्न कोटि का नागरिक बनकर रह गया

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आवश्यक आहार और शीतोष्ण से चाव के अभाव में वह दुर्बल होकर रोग-स्त हो गया.

अब वह अपनी टूटी-सी कुटिया में ा पड़ा.

वह अपने चरित्र से कैसा भी था, पर गर में दया और धर्म का अभाव हीं था.

कुछ दयालुजन उसकी कुटिया में ही सके भोजन के लिए रोटी-पानी और विशेष ावश्यक होने पर औषधि भी दे आने लगे.

सी समय नगर का वार्षिक-मिलन-पर्व ा गया.

हो सकता है, वह होली जैसा ही ोई त्यौहार हो.

यथावसर सारा नगर एक बड़ी सभा एकत्र हुआ. सभा के मंच से उनका पूर्व-परिचित-सुदृढ़, गंभीर स्वर लोगों सुना :

"मेरे स्वजनो! स्थितिप्रज्ञ और जीवन क्त पुरुष के बहुत से लक्षण मैंने आप ोगों को बहुत दिन पहले बतलाये थे, कतु उसके लक्षणों में से एक, जो मैंने ापको अभी तक नहीं बताया था, यह भी कि आप वैसे पुरुष के संबंध में अपनी ी-सीखी धारणाओं की कसौटी पर से कभी स्थायी रूप से परख नहीं कते, क्योंकि वैसे पुरुष का मापदंड ापकी मानसिक धारणाओं की सीमा में हीं, उसके बहुत बाहर की वस्तु आपके नगर में मेरा कार्य आज से माप्त होता है और आपको अपना यह तिम संदेश देकर मैं दूसरे नगर को इसी मय प्रस्थान करता हूं."

और लोगों ने देखा, उसका कृशकाय ख उसकी बहुत पहले की सी अदम्य ाभा से दमक रहा था. मंच से उतरते मय उसकी चाल में एक परम समर्थ म्राट की-सी चेष्टा थी. उसके पग नगर की श्चिमी सीमा पर फैली पर्वत माला की र जिस द्रुत गति से बढ़ रहे थे, वह पहले भी भी किसी पांव-पयादे मनुष्य में नहीं खी गयी थी. ◾

पूर्ण भिक्षु

तीसरा पहर बीत चुका था. संघ के सभी भिक्षु अपनी-अपनी झोलियां भिक्षान्न से भरी लेकर लौट चुके थे. केवल एक तरुण-भिक्षु 'अजितकाम' अभी तक नहीं लौटा था.

नियमित प्रतीक्षा की अवधि पूरी करके संघनायक उपगुरु के आदेश से सभी भिक्षु भोजनशाला में आ बैठे. वे भोजन कर उठ ही रहे थे कि अजितकाम ने वहां प्रवेश किया. उसकी झोली खाली थी.

उपगुरु की प्रश्नभरी दृष्टि का अजितकाम ने उत्तर दिया :

"भिक्षा मैंने ली थी, थोड़ी, केवल अपनी उदर-पूर्ति भर के लिए. तदनंतर कुछ नगर जनों के साथ धर्मचर्चा में लग गया. बीच में समय होने पर मैंने वह भोजन प्रसाद पा लिया. वार्ता से निवृत्त होने पर अब यहां आया हूं."

सभी भिक्षुओं की कुतूहल, तिरस्कार भरी आंखें अजितकाम के मुख पर जा पड़ीं. अजितकाम का यह कार्य नियम विरुद्ध ही नहीं, उसकी संकुचित स्वार्थ-वृत्ति का सूचक भी था.

"तुमने संघ की मर्यादा का उल्लंघन किया है अजित, हम तुम्हें अब अपने बीच नहीं रख सकेंगे." उपगुरु के स्वर में तीव्रता का पुट था.

उपगुरु के आदेश पर सभी भिक्षु प्रवचन-शाला में एकत्र हुए.

"अजितकाम को विदा देने के ही लिए हम सब यहां एकत्रित हुए हैं." उपगुरु का स्वर अत्यंत कोमल और विनीत था, "बहिष्कार की भावना के साथ नहीं, प्रत्युत अपनी नवोदित आंतरिक श्रद्धा एवं सम्मान-भावना की अंजलि लेकर. अजित बंधु ने आज हमारे धर्म संघ की अनुगति श्रेणी से उत्तीर्ण होकर अग्रगति श्रेणी मे प्रवेश किया है. जो वर्ग के लिए—दूसरों के लिए—मांगता है, वह अनुग, अपूर्ण भिक्षु है और जो केवल अपने ही लिए मांगता है, वही परम लोक-साधक पूर्ण भिक्षु है. अजित बंधु का भिक्षु-पद का कार्य आज से प्रारंभ हुआ है. वह अब इस संघ का अंग नहीं, यह संघ ही उसका अंग है. ☐

प्रेमकथा विशेषांक में

'टॉपिक आफ कैंसर' के प्रख्यात एवं विवादास्पद अमरीकी लेखक हेनरी मिलर से साक्षात्कार—प्रेम, सेक्स, आत्मा और शरीर के संदर्भ एक लेखक के लिए क्या अहमियत रखते हैं ? ये संदर्भ देश और काल से परे भी हैं और उनसे बंधे हुए भी—आखिर क्यों?

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"जिस पादरी ने हमें धर्म-पुस्तिका पढ़ाई थी, उसके पास कुछ और चित्र भी थे. उदाहरण के लिए 'अच्छे लड़के का दिल' और 'बुरे लड़के का दिल'. वह इन दोनों दिलों को एक जादूगर की भांति एक-दूसरे में गडमड करके हमें दिखाते थे!" . . . अच्छा और बुरा यानी पाप और पुण्य आज इस कदर उलझ गये कि इनमें से किसी एक को परख पाना बहुत मुश्किल हो गया है. मसलन—**"पड़ोसी की मदद करना ईसाई धर्म है, लेकिन एक गाल की दाढ़ी अधूरी छोड़कर भला कोई कैसे जाता?"** . . . ईसा के जन्मदिन पर उनकी स्मृति को ताजा करते हुए प्रस्तुत है पाप और पुण्य के आवरण को स्पष्ट करती एक स्वीकृति पूर्ण कहानी—

जोज़फ गुड की पाप स्वीकृति

• पाल ज़कारिया

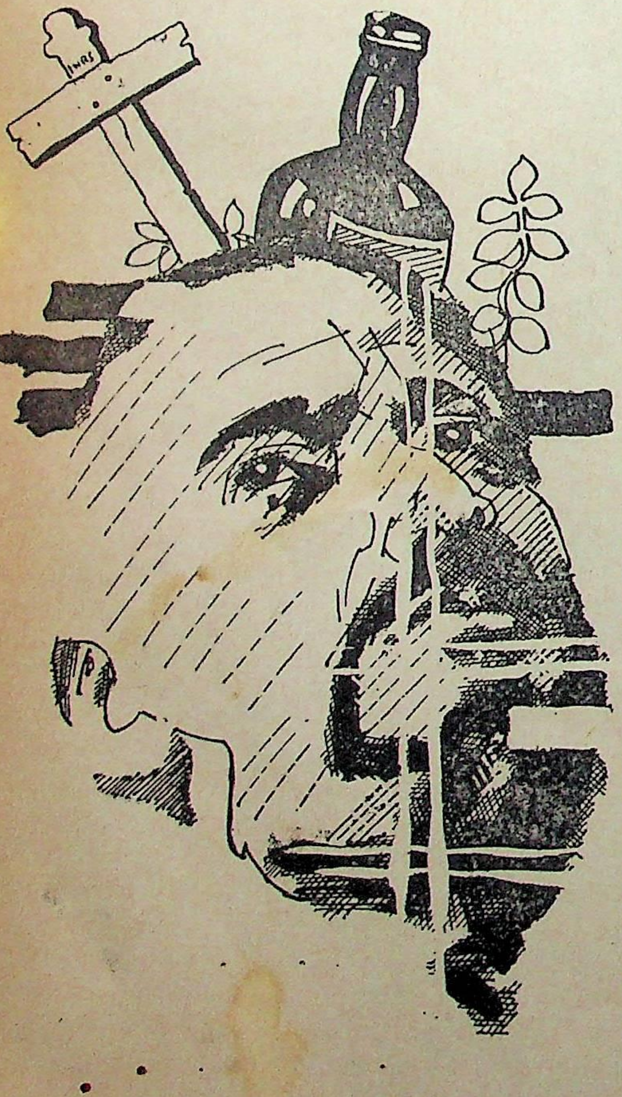

मेरा नाम जोज़फ गुड है. 'गुड' मेरा उप नाम मात्र है. ले
इससे आप यह न समझ लीजिए कि मैं इस नाम के संबद्ध संभावनाओं से परिचित नहीं हूं. जोज़फ नाम तो है, जिसका हम ईसाइयों के आध्यात्मिक जीवन में बहुत महत्त्व है. बचपन में गिरजे का वह भजन मुझे अब तक याद जो हम गाया करते थे:

सेंट जोज़फ के नाम के साथ
असंख्य गुण जुड़े हुए हैं
क्या ऐसे पुनीत बालक को गोद में लेना
अपने-आप में भारी वरदान नहीं है?

गिरजे के एक कोने में फादर जोज़फ की एक मूर्ति पर रखी हुई थी, जिसमें दाढ़ीयुक्त जोज़फ खड़े मुस्करा हैं; उनके एक हाथ में यीशु और दूसरे में शांति-प्रतीक रविवार को दोपहर की प्रार्थना के दौरान हम इसी मेज के घुसकर बैठ जाते थे और अपने गुप्तांगों का पापपूर्ण प्रद करते थे और ऐसा करते समय हमारे मुंह से किलकारियां निक थीं. अपने जीवन में मैंने जो भले-बुरे कर्म किये हैं, शायद उ प्रेरणा-स्रोत यही दुराचरण रहा हो, जो हम उस पुण्यस्थल किया करते थे.

अब मैं पैंतीस वर्ष का हूं. मेरी आधी या उससे अ जिंदगी बीत चुकी है और मेरे पास कुछ भी तो नहीं, अपनी उपलब्धि के रूप में पेश कर सकूं. मैंने शादी भी नहीं की इसलिए कि मैं न तो उसके लिए मानसिक रूप से तैयार पाया और न ही कोई ऐसा उपयुक्त दर्शन मेरे पास था, मुझे ऐसा करने के लिए प्रेरित करता. मैंने कभी मतदान में भाग नहीं लिया, क्योंकि उसके लिए जिस मानसिक संतुलन आवश्यकता होती है, वह मैं कभी नहीं जुटा पाया. सैंकड़ों की हत्या करने को मेरा मन चाहा है, लेकिन क्या यह

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

? अक्सर मेरे मन में यह इच्छा हुई है कि मैं सुंदर स्त्रियों के नानागार में जाकर अदृश्य रूप से खड़ा हो जाऊं, लेकिन ऐसा ो भी सकता है? अनेक बार मैंने हिमालय पर चढ़ने की ठानी , किंतु कभी मुझे समय ही नहीं मिल पाया. कभी-कभी मेरे मन इस प्रकार का अस्पष्ट-सा विचार भी आया है कि मैं मदर रेसा के संगठन में शामिल हो जाऊं और उनके काम में हाथ टाऊं, लेकिन मैं बार-बार भूल जाता हूं. अंततः मैंने यह निर्णय किया कि मैं अपने गांव लौट जाऊं और पहाड़ की चोटी पर क्षों के झुरमुट में छिपे अपने घर में जाकर रहने लगूं. लेकिन स शहर का क्या करूं, जो निरंतर मेरे अहं को पोषित करता हा है और मुझे कहीं जाने नहीं देता!

इसी उधेड़बुन का यह परिणाम है कि मैं उस समय भी अपने ाता-पिता के पास जाकर न रह सका, जबकि उनके जीवन ा सूर्य अस्त हो रहा था और उन्हें मेरी आवश्यकता थी. अभागा अपने इसी कमरे में पड़ा अपनी नौकरी की खैर नाता रहा और यही सोचता रहा कि जब उनकी दशा और गड़ जायेगी तो छुट्टी लेकर चला जाऊंगा.

मैं ऊंचाई पर बने शहर के इस मकान में रह रहा हूं. खिड़की में खी वाट-69 की बोतल में लगे मनी-प्लांट की बेल अपनी न जड़ें पानी में फैलाये ऊपर की ओर चढ़ रही है. मैंने इसे पने घर के पेड़ों और बाग के पौधों की याद ताजा रखने के ए लगा रखा है. घर में आने के बाद जब मैं दरवाजा बंद कर ता हूं तो पत्तों से ढंकी इस खिड़की के माध्यम से मैं बाहर दुनिया का दृश्य उसी प्रकार देखा करता हूं, जिस प्रकार हाड़ी पर बने अपने मकान के बरामदे में से देखता. लेकिन हां चूंकि आप सोलहवीं मंजिल पर हैं, इसलिए यहां से केवल न्य सोलहा मंजिलें ही दीख पड़ती हैं. और कुछ दिखायी हीं देता. खिड़की पर पत्तों में टंगे आईने के सामने खड़ा कर मैं रोज दाढ़ी बनाता हूं. यदि कोई चाहे तो पत्तों को रा-सा हटाकर नीचे दूर तक का नजारा देख सकता है, किन मैं ऐसा कभी नहीं करता, क्योंकि मेरा सिर चकराने ाता है. जब मैं बीस वर्ष का था, तभी से मैं घुमड़ी का शिकार और उसे अपनी अन्य अनेक महत्त्वपूर्ण उपलब्धियों की भांति ाये हुए हूं.

ज सवेरे की ही बात है कि मैं बड़े मजे से पत्तों से घिरे ईने में अपना चेहरा देखकर शेव कर रहा था. जब भी मैं केले में अपना चेहरा दर्पण में देखता हूं तो एक काम जरूर ता हूं, मैं अपने होंठ दोनों हाथों से पकड़कर भरसक खींचता और अपने पीले दांतों से खोपड़ी की मुस्कराहट का अभिनय ाता हूं. प्रतिदिन मैं अपने को विश्वास दिलाता हूं कि यह तर बनी घुटी-घुटी-सी मुस्कान ही सब कुछ है. बदहजमी कारण मेरा पेट अक्सर खराब रहता है और इसी से मेरे में छाले पड़ जाते हैं, जिनमें बड़ी पीड़ा होती है. एक दिन मैं अपने होंठ और गाल, दोनों हाथों से खींचकर इन छालों देख रहा था कि मुझे सहसा अपनी मुस्कराती हुई खोपड़ी र आयी और उसने मुझे फंसा लिया.

लेकिन यह सब योंही नहीं हो गया. हम ईसाइयों का कपाल के साथ बहुत ही आध्यात्मिक और घनिष्ठ संबंध है. इसका प्रारंभ गोलगोथा (कपाल) से हुआ था. और उसके बाद हमने कितनी ही बार यरूशलम पर विजय पायी और हमने अपने शत्रुओं के कपालों को अपनी तलवारों और भालों में लगाकर ऊंचा उठाया. यह और बात है कि अंत में यरूशलम हमारे हाथों से जाता रहा. मृत्यु के पश्चात भी हम अपने कपाल दूसरों की तुलना में कुछ अधिक लंबे रखते हैं. चिता की अग्नि में जलकर यदि कुछ बचता है, तो केवल अस्थियां! लेकिन हम मिट्टी में मिलकर अधिक संतोष का अनुभव करते हैं और धीरे-धीरे वर्षा के पानी में घुलकर नयी मिट्टी में परिणत हो जाते हैं, जिसमें से कहीं घास, कहीं फूल,कहीं खाद, कहीं संचित पराग उत्पन्न होता है और वह अदृश्य वाष्पपुंज निकलता है जो रात्रि का आलिंगन करता है. अस्थि-कूप के एकाकीपन में हमारे कपालों का राज्य होगा, जो आकाश में सूर्य की यात्रा; गिरते हुए तारों और चांदनी रात में उड़ते हुए चमगादड़ों के साथ देखकर निरर्थक हंसी हंसेंगे.

▣

आज भी मैं कुछ देर तक अपने कपाल की हंसी देखता रहा. फिर मुझे अपने मृत पिता का स्मरण हो आया. उनकी मृत्यु से एक वर्ष पहले जब मैं गांव गया था, तभी मेरी उनसे आखिरी मुलाकात हुई थी. उन्होंने कभी अपने बच्चों से सहायता नहीं ली थी, लेकिन उस दिन उन्होंने मुझसे पांव दबवाने के लिए कहा. मैंने भी अपने पिता के काले, झुर्रियोंभरे और सूजे हुए पांव अपने गोरे और बेदाग हाथों में लिये और आहिस्ता-आहिस्ता उन्हें दबाने लगा. बालिग होने के बाद वह पहला अवसर था जब मैंने अपने पिता का स्पर्श किया था. मैं उन्हें देखते हुए कतरा रहा था, उधर उन्होंने भी अपनी नजरें बचा ली थीं. लेकिन उन्हें जो तकलीफ थी, उसने हम दोनों को एक सूत्र में बांध लिया था. वही हम दोनों की बिचौलिया थी. मेरे स्मृति-पटल पर वे सभी स्मृतियां एक-एक करके उभरने लगीं. . .मैं उनके पीछे-पीछे खेतों, पहाड़ी नालों के किनारे पर बारूद का एक थैला, छर्रे और एक धागे में बंधे पक्षी लिये चला जा रहा हूं. मुझे वे दिन भी याद आये जब मैं उनके साथ दरिया के किनारे घास पर बैठा हुआ वायु के स्पर्श से पुलकित और संध्या की छाया से आवृत किसी बड़ी मछली के पानी से मुंह निकालने की प्रतीक्षा किया करता था. मुझे स्मरण हो आये वे दिन, जब मैं पहाड़ी पर उनके पीछे-पीछे दौड़ रहा हूं और दूसरी ओर पहाड़ी के पीछे छिपे गिरजे के प्रांगण से ढोल बजने की ध्वनि सुनायी दे रही है और मेरा सारा शरीर उस जादुई आवाज से पुलकित हो रहा है. पिताजी शांत थे और उस निस्तब्धता के वातावरण में मुझे इलहाम हुआ, जिसमें प्रश्नों का अस्तित्व समाप्त हो जाता है!

उसके बाद मैं लौट आया और शहरी जीवन के गर्त में तब तक छिपा रहा जब तक कि 'तार वाले' ने आकर मुझे वहां से न निकाला.

अभी मैंने एक गाल का शेव ही किया था कि नीचे सड़क पर कुछ अस्पष्ट-सी आवाजें मेरे कानों में आयीं. मैंने मनी-प्लांट के पत्ते हटाकर नीचे की ओर झांका. कैसा मूर्ख था मैं भी! मेरी सतत संगिनी घुमड़ी का चमत्कार देखिए कि नीचे की सड़क ऊपर उठती

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हुई दिखाई दी, मानो किसी ने उसे रस्सी से बांधकर खींच लिया हो और उसने मुझे एक धक्का-सा दिया. मैं कुछ देर अपना चेहरा हाथों से ढंके खड़ा रहा, फिर दुबारा बाहर की ओर झांकने लगा. सड़क पर दुर्घटना हो गयी थी. सड़क के बीचों-बीच खड़ा एक ट्रक ऊपर से खिलौना-सा लगता था. लोग ट्रक के नीचे घुसकर कुछ देख रहे थे. यह देखते ही मुझे फिर एक जोर का चक्कर आया और मेरा दिमाग नीचे दूर तक धंसता चला गया. ट्रक, सड़क, भीड़ और जो कुछ भी वहां था, सभी का विलाप मेरे कानों में घुस गया और मैं फिर चकरा गया. खिड़की को कांपते हाथों से पकड़कर मैंने अपना सिर हटाया और खड़ा साबुन के उन बुलबुलों को देखता रहा, जो मेरे चेहरे पर मुरझाकर रह गये थे. मैंने सोचा, भला ऐसे में मेरा क्या कर्तव्य है? क्या मुझे इस चोटी से उतरकर नीचे उन लोगों की मदद के लिए नहीं जाना चाहिए? एक ईसाई होने के नाते मेरा क्या कर्तव्य है? मेरी 'धर्म पुस्तिका' में एक चित्र समारी का है, जो जेरिको को जाने वाली अंधियारी सड़क पर गिरे एक व्यक्ति को निकालने का प्रयत्न कर रहा है और उसका खच्चर पास ही खड़ा उसकी प्रतीक्षा कर रहा है.

▣

जिस पादरी ने हमें धर्म-पुस्तिका पढ़ाई थी, उसके पास कुछ और चित्र भी थे. उदाहरण के लिए 'अच्छे लड़के का दिल' और 'बुरे लड़के का दिल'. वह इन दोनों दिलों को एक जादूगर की भांति एक-दूसरे में गडमड करके हमें दिखाते थे. अच्छे लड़के का दिल उसके मुस्कराते हुए सिर के नीचे ताजा खरबूजे की भांति लटका होता और उसमें से प्रकाश की किरणें निकलती होतीं. ठीक बीच में ईसामसीह सिंहासन पर बैठे हैं. उनके सिर पर मुकुट और शरीर पर राजसी वस्त्र हैं और हाथ में एक दंड है. उनके चरणों में एक सिंह और एक भेड़ बैठी है. फरिश्ते तुहरी बजाते हुए उड़ रहे हैं. बगीचों के फूल खिले हुए हैं. दूसरी ओर बुरे लड़के का दिल गहरे रंग और झुर्रीदार खरबूजे की भांति उसकी विकृत और प्रकुपित मुखाकृति के नीचे स्थित है. सिंहासन पर शैतान बैठा है, जिसके सींग और पूंछ दोनों हैं. सिंहासन को खरबूजे से निकली नारकिक लपटें चाट रही हैं और शैतान के हाथ में एक त्रिशूल है. उसके आसपास मकड़ियां, बिच्छू और एक मोर खड़ा है, जो अपने रंग दिखा रहा है और बंदर खड़े मुंह बना रहे हैं. हम नेकी और बदी के इन उद्यानों को विस्मय से देखा करते थे.

लेकिन जो चित्र हमें हमेशा याद रहता था, वह था, समारी और उसके खच्चर का. टट्टू बड़े शांत भाव से खड़ा प्रतीक्षा कर रहा है, सड़क के दोनों ओर विचित्र, अनजान जंगल हैं, जिनमें अज्ञात वृक्ष और खुफिया रास्ते हैं और उस एकाकी मार्ग के प्रत्येक मोड़ और चट्टानों को देखकर हमारे मन वश में नहीं रह पाते थे. हम दूरस्थ जेरिको (फिलिस्तीन का एक नगर) के धुंधले मीनारों को देखते और गुप्त प्रदेशों की कल्पना करते थे. हम कल्पना में ही उस टट्टू के इर्द-गिर्द एकत्र हो जाते, जो शांत भाव से खड़ा बटिया पर जुगाली कर रहा होता और उसे देखकर हमें नेकी और भलाई के नीरव वातावरण का आभास हो जाता.

मेरे गाल पर लगा साबुन सूख चला था.

मैंने तत्काल यह निर्णय किया कि मैं झटपट नीचे जाऊं और उन लोगों की मदद करूं. जी हा, यही मेरा फर्ज भी था. लेकिन कि तरह? इस प्रश्न का उत्तर मुझे नहीं मिला. मैंने मन में कहा. . . अधिक समय नष्ट नहीं करना चाहिए. पड़ोसी की मदद करना ई धर्म है, लेकिन एक गाल की दाढ़ी अधूरी छोड़कर भला कोई जाता? क्या पता लोग मेरी नीयत पर संदेह कर बैठें. वे यह स सकते हैं कि मैं केवल दिखाने के लिए और खुद को नेक सा करने के लिए यह सब कर रहा हूं. मैंने जल्दी-जल्दी अपने बायें पर पानी लगाया और शेव किया. जल्दी में कई जगह ब्लेड लग गया, लेकिन मैंने सोचा अलमारी में से डिटोल निकालने देर लगेगी, इसलिए पानी से मुंह धोया और अभी तौलिये से ही रहा था कि मुझे याद आया कि मैं पाजामा पहने हुए हूं. व भीड़ है. कहीं मुझे अस्पताल ही जाना पड़ जाये!

लिहाजा मैंने जल्दी से पाजामा उतारा, धुली हुई कम और पतलून पहनी, बालों में कंघी की, चप्पल उतारकर मोजे चढ़ाये और जल्दी से जूते पहने. जूतों पर चमक थी, क्योंकि पिछली रात को बारिश में चलने से वे भीग थे. मैंने ताबड़तोड़ उन पर ब्रश का एक हाथ मारा, दर में ताला लगाया और लिफ्ट की तरफ जा रहा था कि अपना पर्स याद आया. हो सकता है पैसों की ज पड़ जाये. मैं लौटकर आया और अलमारी में से अपना निकाल लाया. मेरा रूमाल भी पर्स के पास ही रखा इसलिए मैंने वह भी उठाकर जेब में रख लिया और दर में ताला लगाकर नीचे की ओर भागा.

▣

लेकिन लिफ्ट के इंडिकेटर पैनल में अंधेरा था. मैंने दबाया लेकिन पैनल खाली ही रहा. इतने में हमारी जमाद हाथ में बुहारी और बोतल लेकर जीने में आती दिखाय और कहने लगी, "सा'ब, लिफ्ट काम नहीं कर रही औ यहां तक चढ़ते-चढ़ते मर गयी. सा'ब, कल क्रिसमस है क्या आप ईसाई होकर मुझ जैसी गरीब औरत को क्रि की बख्शीश नहीं देंगे?"

चाबी उसे देते हुए मैंने कहा, "सफाई करके चाबी द के ऊपर कगार पर रख देना. मैं नीचे जाकर अभी आता

"क्या आप वह दुर्घटना देखने जा रहे हैं, सा'ब? मैं अभी-अभी देखी है. ट्रक का एक पहिया उस पर से उतर है. बचना तो मुश्किल ही है. उधर उसके बीवी-बच्चे च लिए दूध का इंतजार कर रहे थे." उसने चाबी ली और सिर हिलाती हुई मेरे कमरे की ओर चल दी.

मैं खड़ा सोचता रह गया. नीचे जाने का मतलब था मंजिलों की उतराई, हर मंजिल की बत्तीस सीढ़ियां और रास्ते में कोई मिल गया तो उससे बातें भी होंगी ही, को देखकर नमस्कार करना होगा और किसी को न हुए भी मुस्कराकर देखना पड़ेगा. ऐसे भी अनेक होंगे, लोग बचते हैं और जो हाथ में दूध की बोतलें लिये कांपते चले आ रहे होंगे. करूं तो क्या करूं, मैंने सोचा वापसी तक लिफ्ट ठीक हो जायेगी? पैंतीस साल की में अब न मेरे पांवों में दम है और न फेफड़ों में ताकत.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"मुझे सबसे पहले जो प्रार्थना याद आयी वह यह थी--हे मेरी आत्मा, अपने ईश्वर की स्तुति कर, उसके वरदान को न भुला! फिर मैंने इस प्रकार प्रार्थना की--हे परमात्मा! यदि तू हमारे पापों को याद रखेगा तो कौन बच पायेगा!"

डबुन में मैं इधर-उधर टहलता रहा. इसका मतलब यह है वह व्यक्ति खून में लिथड़ा पड़ा है. कौन होगा भला? कहीं कोई परिचित तो नहीं? ऐसा क्यों न करूं कि दूरबीन कर अपनी खिड़की से ही देखूं और अगर इतनी देर में लोग उसे अस्पताल ले गये तो? नहीं नहीं, मुझे उसकी कुछ कुछ मदद तो करनी ही चाहिए. अगर दफ्तर जाते समय ट खराब हो जाती तो क्या मैं छुट्टी करके घर बैठ जाता? जी से सीढ़ियां उतरने लगा.

अभी मैं दस सीढ़ियां भी न उतर पाया था कि मेरा हाथ के जंगले पर किसी नरम और गुप्त चीज से टकराया. घूमा और मैंने झुक कर उस स्थान को देखा. जी हां, यह था, जिसका मुझे अंदेशा था. किसी ने नाक सिनककर जंगले पर लगा दी थी.

कुछ ही क्षणों में सीढ़ियों के अनंत ढाल ने बहती हुई की भांति मेरे पांवों को कंपाना शुरू कर दिया. वे लड़-ने लगे. कभी तो वे सीढ़ियों पर से फिसलने भी लगे कहीं-कहीं जहां सीढ़ियां नहीं भी थीं, मुझे दिखाई देने . इस प्रकार दसवीं मंजिल के मोड़ पर मैंने एक ऐसी सीढ़ी पैर रखा जो थी ही नहीं और नतीजा यह हुआ कि मैं मुंह बल गिरा . . . और मुझे लगा वह सीढ़ी मेरा मुंह चिढ़ा रही मैं हड़बड़ाकर उठा. मेरा सिर चकरा गया. मैंने दीवार सहारा लेकर खड़ा होना चाहा तो मेरे पैर जवाब दे गये, अपनी आंखें बंद कर लीं. बंद आंखों के अंधेरे में मेरा जीवन तूफान में झुके हुए वृक्षों की भांति दिखायी दिया. तूफान मौत का था.

झुके-झुके मैंने हाथ फैला दिये और मैं अंदर ही अंदर भीत हो उठा. मेरे स्मृति-पटल पर मेरे पिता की मुखाकृति री—कष्ट से कराहती हुई और निस्तेज जैसी टूटी हुई शाखाओं सूरजमुखी मंद-मंद चमक रहे हों. एक असह्य उदासी की भूति मुझे हुई और दोनों हाथों से अपना चेहरा छिपाये मैंने भगवान का स्मरण किया. मैंने अपनी प्रार्थना याद करने की ा की. लेकिन प्रार्थना काहे के लिए? आओ, सब कुछ भूल के लिए प्रार्थना करें. आओ प्रार्थना करें! ईश्वर हमें शांति दे, सबसे पहले जो प्रार्थना याद आयी, वह यह थी: हे मेरी आत्मा, ने ईश्वर की स्तुति कर, उसके वरदान को न भुला. फिर मैंने प्रकार प्रार्थना की : हे परमात्मा! यदि तू हमारे पापों को याद गा, तो कौन बच पायेगा?

मेरे अनगिनत पापों की
गिनती न कर
और मुझे. . . से परख.

मनुष्य का जीवन घास की भांति है. वह खेतों के फूलों की तरह लता है और जब लू चलने, लगती है तो मुरझा जाता है. जहां उगा था, वह जगह भी लोग भूल जाते हैं. यह कैसी भयानक ह है, जहां मुझे अपने परमात्मा का साक्षात्कार हुआ. . . यामत के दिन जब क्रास का निशान लिये फरिश्तों के साथ स्वर्ग में आयेंगे और स्वर्ग के द्वार खोल दिये जायेंगे, कब्रों से मुर्दे अपने-अपने शरीरों से युक्त उठेंगे और दुष्टों को साधुओं से अलग किया जायेगा.

मैंने चौंककर आंखें खोल दीं. कोई मुझे कंधे पकड़कर हिला रहा था. लोग मुझे घेरे खड़े थे. मैं दीवार से हटा और मूर्खों की भांति उन्हें घूरने लगा. मेरे चेहरे पर हवाइयां उड़ रही थीं. यह क्या गजब हो गया! क्या मैं एक अच्छा ईसाई बनने इसलिए चला था कि खुद ही किसी दुर्घटना का शिकार हो जाऊं? चोरी-छिपे अपने गालों से आंसुओं की नमीं पोंछते हुए मैंने उपस्थित जन-समुदाय से कहा, "मुझे चक्कर आ गया था" उन्होंने हमदर्दी में अपने सिर हिलाये... यह लिफ्ट भी एक लानत है. इसकी शिकायत करनी चाहिए!

▣

उन सबको वहीं छोड़कर मैं सीढ़ियों पर बेतहाशा दौड़ा और नीचे भीड़ के पास पहुंच गया. एक शोर करती हुई एंबुलेंस भीड़ को चीरती हुई मेरे समीप से गुजरी. मैं अपनी कांपती टांगों को किसी तरह घसीटता हुआ भीड़ तक पहुंचा. न जाने उन लोगों ने क्या-क्या कहा, जिनसे मैं टकराया, लेकिन मैंने कोई ध्यान न दिया. वाहन का दरवाजा पहले ही खुला था. जब मैं दोनों हाथों से भीड़ को हटाता हुआ वाहन तक पहुंचा तो उसमें से दो अनुचर स्ट्रेचर लिये उतरे और उन्होंने सड़क पर खड़े व्यक्ति को उठाकर उस पर लिटाया. मैंने अंतिम धक्का लगाया और मैं स्ट्रेचर के करीब था. आधा स्ट्रेचर एंबुलैंस में जा चुका था, लेकिन पूरे स्ट्रेचर को वे अंदर ले जा नहीं पाये थे कि मैंने उसका एक सिरा थाम लिया. मेरे हाथ उस आदमी के पैर आये. . .और वे काले झुर्रीदार मृत पांव एक क्षण के लिए मेरे हाथों में रहे!

फिर दरवाजा बंद हुआ और एंबुलैंस चीखती-चिल्लाती वहां से चली गयी. उसके निष्प्राण पैरों पर लगे रेत के कुछ कण मेरे हाथों पर चिपके गये मानो हमारे क्षणिक संपर्क का प्रतीक हों. देखा आपने, मैं कितना अभागा हूं, कितना अभिशप्त. तो क्या आप अब भी यहीं कहेंगे कि मैंने अपनी ओर से कोई प्रयत्न नहीं किया? और कल क्रिसमस है. जरा सोचिए तो, अभी मुझे बत्तीस जीने चढ़कर उसके लौह-शिखर पर जाना है. कृपया, परमात्मा से मेरे लिए प्रार्थना करें! □

● अनुवाद : नूरनबी अब्बासी
द्वारा : शब्दकार, गली डकौतान,
तुर्कमान गेट, दिल्ली-6

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

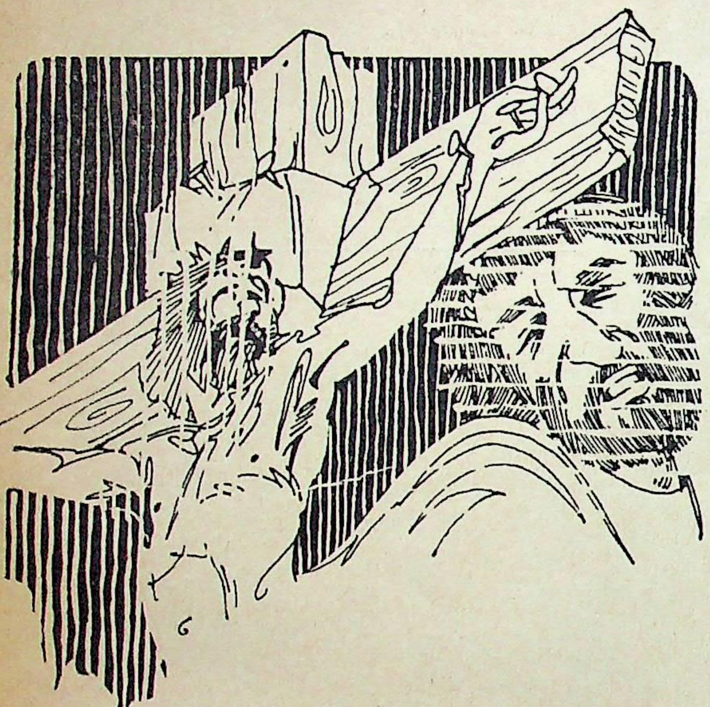

चित्रांकन : पाली

लाज़ारस

• कारेल चापेक

"... मुझे पता है, वहां क्या क्या हो चमत्कार होगा, चमत्कार. बस, वो ज सा अपनी उंगली उठायेंगे और जेल दीवारें ढह जायेंगी. और फिर उन सब समझ में आ जायेगा कि वो दरअसल कौन... "

प्रस्तुत है विश्वास, क और मौत के आतंक से सराबोर चेको वाकिया के पुरोधा लेखक कारेल च की एक कथाकृति.

यह खबर बेथानी में भी पहुंच गयी कि गैलीलिया के ईसा को पकड़कर सींखचों में बंद कर दिया गया है.

मार्था ने सुना तो वह हाथ मलने लगी और उसकी आंखों से टप-टप आंसू गिरने लगे, "और लो! मैं कब से कह रही थी! वो येरूशलम गये ही क्यों? वो यहीं क्यों नहीं रहे? यहां किसी को उनका पता भी न लगता. चुपचाप अपनी बढ़ईगीरी करते रहते. अपने पिछवाड़े के आंगन में वो अपनी सुथारशाला खोल लेते..." और वह फफकने लगी.

लाज़ारस के चेहरे का रंग उड़ गया और आंखों में अजब-सी कौंध आ गयी, "ऐसा नहीं कहते मार्था!" वह बोला, "येरूशलम तो उन्हें जाना ही था. फ़ारीसियों और पब्लिकनों के बीच न जाते तो क्या करते! सच्चाई तो मुंह पर ही बतायी जाती है. औरतों को कुछ भी समझ नहीं होती!"

"मैं सब समझती हूं," मेरी धीरे से बोली. वह खो-सी गयी थी, "और मैं कहे देती हूं. मुझे पता है, वहां क्या-क्या होगा. चमत्कार होगा, चमत्कार. बस, वो जरा-सा अपनी उंगली उठायेंगे और जेल की दीवारें ढह जायेंगी. और फिर उन सबकी समझ में आ जायेगा कि वो दरअसल हैं कौन. सब के सब उनके पैरों में गिर पड़ेंगे और चिल्लाने लगेंगे, चमत्कार! चमत्कार!"

मार्था की आवाज रूखी-सी थी, "देखती रहो! उनसे कभी खुद की देखभाल हुई है? अपने वास्ते तो वो कुछ भी नहीं करेंगे. उंगली तक नहीं हिलायेंगे अपने लिए. हां, अगर मदद वाले आ जायें तो और बात है." मार्था की आंखें फैल गयीं, पता, वो लोगों की राह ही देख रहे हों कि लोग आयें और करें. कितने लोगों ने उनकी बानी सुनी है, कितनों की मदद क चुके हैं! वो सोच रहे रहे होंगे कि बस, अब सारे लोग खबर सु दौड़े आ रहे होंगे!"

लाज़ारस बोल पड़ा, "मुझे भी ऐसा ही लगता है. अ लोग डरती क्यों हो? सारा जूडिया देश उनके साथ है. ये कह कुछ अच्छा नहीं लगेगा कि...अरे सुनो, मैं जाकर दे मार्था, मेरा सामान तैयार कर दो. मैं येरूशलम जाता हूं."

मेरी उठ खड़ी हुई, "मैं भी चलूंगी. जेल की दीवारें टूट ज और वो दिव्य ज्योति की तरह प्रकट होंगे. मार्था, ज़रा सो कैसा लगेगा वह दृश्य! मैं कहती हूं, उनका कोई मुकाबला कर सकता!"

मार्था कुछ कहने ही जा रही थी कि रुक गयी, "ठीक है लोग हो आओ!" वह बोली, "लेकिन घर में भी कोई चाहिए. मुर्गियों और बकरियों को चारा देना है. मैं अभी एक में तुम्हारे कपड़े तैयार कर देती हूं और दो-एक रोटियां सेंक हूं. मुझे बड़ा अच्छा लग रहा है कि तुम वहां जा रहे हो!" कहा.

जब वह लौटी तो चूल्हे की आंच से उसका मुंह लाल था. ला

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बिल्कुल पीला पड़ गया था और कसमसा रहा था. कहने लगा, "सुनो मार्था, मेरी तबीयत ठीक नहीं लग रही है. बाहर मौसम कैसा है?"

"अरे, बहुत प्यारा और गुनगुना," मार्था ने जवाब दिया, "तुम्हें बहुत अच्छा लगेगा."

"यहां तो अच्छा होगा, पर येरूशलम में जब देखो, तब किटकिटाती ठंडी हवा चलती रहती है." लाज़ारस बोला.

"मैंने तुम्हारा गरम लबादा रख दिया है." मार्था बोली.

लाज़ारस भुनभुनाया, "गरम लबादा! उसमें तो पसीने से तर हो जाऊंगा और फिर बर्फ की तरह जम जाऊंगा. उसका क्या फायदा? देखो तो, मुझे बुखार तो नहीं है? मैं सफर में बीमार नहीं पड़ना चाहता. मेरी के होने न होने से कुछ नहीं होगा. और अगर मैं ही बीमार पड़ गया तो उनकी क्या मदद करूंगा?"

मार्था ने प्यार से उससे कहा, "तुमको बुखार नहीं है." फिर मन ही मन सोचने लगी, 'हे भगवान, जब से लाज़ारस का नया जन्म हुआ है, यह कितना अजीब हो गया है!'

"उस बार ठंडी हवा ने ही तो मुझे दबोच लिया था. उस बार जब...जब मैं इतना बीमार हो गया था," अनमनेपन से लाज़ारस बोल रहा था. वह अपनी पिछली मौत को याद नहीं करना चाहता था, "प्यारी मार्था, क्या बताऊं, तभी से मुझे कभी चैन महसूस नहीं हुआ. ये सफर, ये आपाधापी...मुझे लगता है, मैं यह सब बर्दाश्त नहीं कर पाऊंगा, लेकिन जाऊंगा तो ज़रूर ही. बस, ये सिहरन ज़रा-सी कम हो जाये."

"जाना तो है ही," मार्था का दिल भारी था, "उनकी मदद के लिए किसी को जाना ही चाहिए. आखिर उन्होंने ही तुम्हें... चंगा किया था, है न?" उसके स्वर में अनिश्चय आ गया, क्योंकि उसे लगा कि मुर्दों में से उसके ज़िंदा किये जाने का ज़िक्र करना बड़ी नादानी होगी, "लाज़ारस, सोचो तो भला! जब तुम उनको आज़ाद करा लोगे तो उनसे फिर मदद मांग सकते हो, अगर तुम्हें यह लगे कि तुम्हारी तबीयत ठीक नहीं है."

लाज़ारस ने आह भरकर कहा, "सो तो है ही, पर मान लो, मैं वहां तक पहुंच ही न पाऊं! या मान लो, मैं बहुत ही देर से पहुंचूं! तब? ये सब बातें भी सोचनी पड़ेंगी. और मान लो, येरूशलम में दंगा हो जाये, तब? देवीजी, आपको इन रोमन सिपाहियों के बारे में कुछ भी पता नहीं है. हे भगवान, काश मैं भला-चंगा होता!"

मार्था बोल पड़ी, "वाह, तुम भले-चंगे तो हो लाज़ारस! उन्होंने जब से तुम्हें चंगा किया है, तब से तुम्हारा ठीक रहना लाज़िमी है."

"हूं!" लाज़ारस कट गया, "मैं ठीक हूं या नहीं, यह मुझसे ज़्यादा कौन जान सकता है! मैं यही कह सकता हूं कि उस वक्त से लेकर अब तक एक पल भी मुझे बेचैनी से छुटकारा नहीं मिला. ऐसा नहीं है कि मुझे...फिर से अपने पैरों पर खड़ा करने के बदले में उनका शुक्रगुज़ार नहीं हूं. तुम ऐसा मत सोचना, मार्था! पर अगर तुम वह जानती, जो मैंने जाना है... कि...कि..." उसे झुरझुरी-सी आ गयी और उसने अपना मुंह ढांप लिया. "मार्था! मेहरबानी करके मुझे अभी अकेला छोड़ दो. मैं अभी ठीक हो जाऊंगा. बस एक मिनट लगेगा—यह दौरा निकल जायेगा."

ग़ज़ल

इक तरफ बागी मशालें इक तरफ है शा'जहां,
देखना है यह कहानी खत्म होती है कहां.

पत्थरों का खौफ होगा शीशमहलों के लिए,
काटकर चट्टान को हमने बनाया है मकां.

बिजलियों पर टिप्पणी भी दूं मुझे ये हक नहीं,
गो चमन में सिर्फ मेरा ही जला है आशियां.

किस बहर में इस शहर की धड़कनें बांधूं यहां,
हर नज़र में हैं शरारे हर ज़िगर में है धुआं.

पंख जलकर ही रहे संपातियों के स्वप्न के,
है ज़मीं आखिर ज़मीं, है आसमां फिर आसमां.

▣ शिवओम अंबर

मार्था चुपचाप जाकर आंगन में बैठ गयी. वह अपनी सूखी अपलक आंखों से सामने घूरती रही. उसके हाथ जुड़े हुए थे, पर वह प्रार्थना नहीं कर रही थी. काली मुर्गियां ठिठककर कनखी से उसे देखने लगीं. उन्हें उम्मीद थी कि वह दाने देगी, पर जब ऐसा होता नहीं दीखा तो वे छांह में ऊंघने चली गयीं.

लाज़ारस दबे पांव बरामदे से निकल गया. उसका रंग जैसे मौत से सफेद हो गया था और दांत बज रहे थे. उसने हकलाते हकलाते कहा, "मार्था, सुनो, मैं...मैं नहीं...अभी... हालांकि मुझे जाना है...शायद कल तक चला जाऊं."

मार्था के गले में जैसे कुछ फंस गया, "तुम जाकर लेट जाओ," किसी तरह उसने कह ही दिया, "तुम...तुम नहीं जा सकते."

"मैं जाना चाहता था," लाज़ारस हकला रहा था, "पर तुम सोचो मार्था...शायद कल...पर मुझे घर में अकेले मत छोड़ना, सुना! अकेले मैं यहां क्या करूंगा?"

मार्था उठ खड़ी हुई, "बस, तुम जाकर लेट जाओ," अपनी हस्बमामूल कड़ी आवाज़ में वह कह रही थी, "मैं तुम्हारे पास ही रहूंगी."

तभी मेरी सफर की पूरी तैयारी के साथ बाहर आंगन में निकल आयी, "तो लाज़ारस, चलें हम लोग?"

"लाज़ारस नहीं जा सकता." मार्था ने भर्राई आवाज़ में कहा, "उसकी तबीयत ठीक नहीं है."

"तब मैं अकेली ही चमत्कार देखने जाऊंगी." मेरी ने आह भरी.

लाज़ारस की आंखों से आंसू टपकने लगे, "मार्था, मेरी मी कितनी इच्छा थी कि मैं जाऊं...लेकिन...काश मुझे फिर से...फिर से...मर जाने का इतना खौफ न होता!" ▢

● अनुवाद : गिरधर राठी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

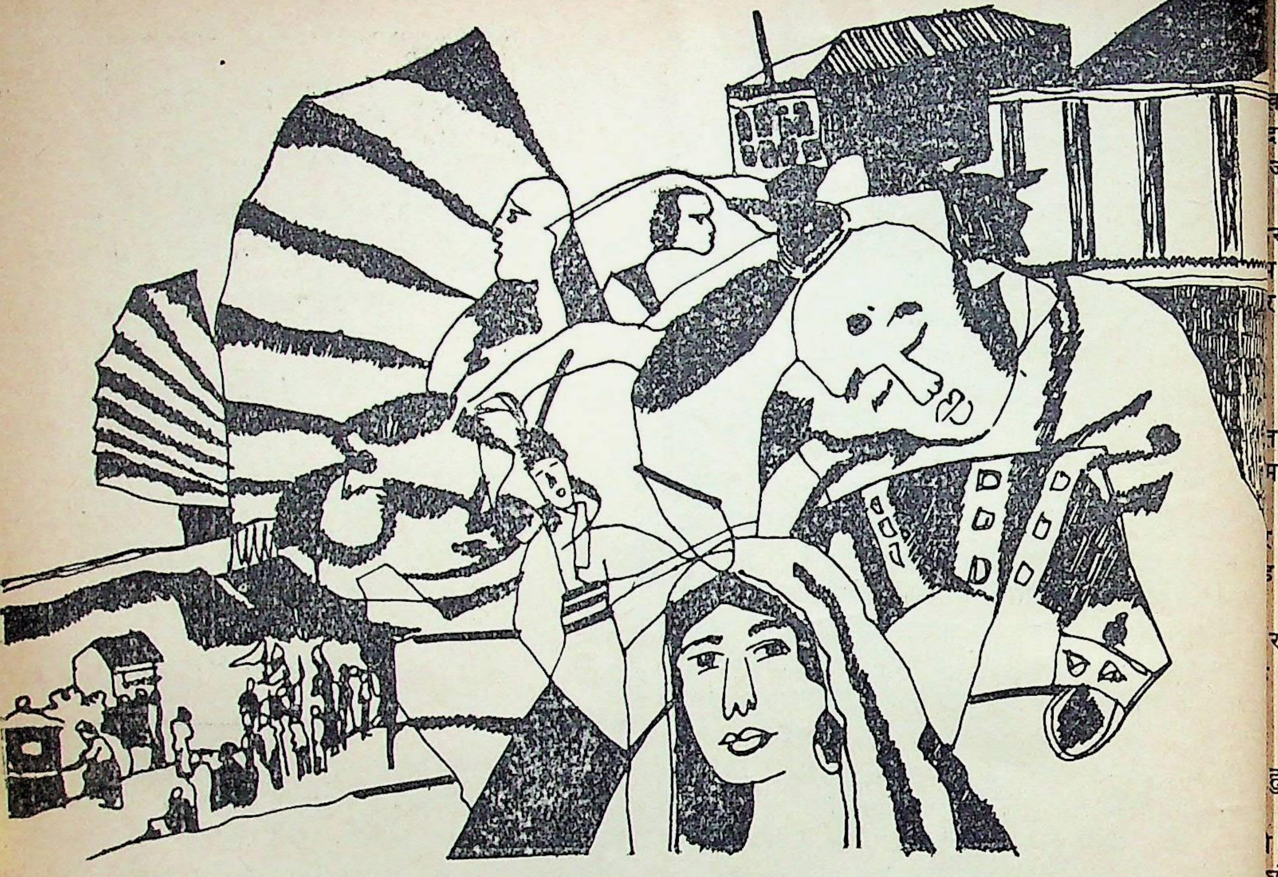

धारावाही उपन्यास : चौथी किस्त

खुदा सही सलामत है

'खुदा सही सलामत है!' यह कोई खबर नहीं है, क्योंकि खुदा तो जहां का भी होगा—आसमान का या जमीन का—सही सलामत ही होगा. सवाल तो सिर्फ बंदों की सलामती का है. बंदों की सलामती की पड़ताल करते रवींद्र कालिया ने इन्हें अपने उपन्यास के पात्रों में ढाला है. ये पात्र किसी एक गली के होते हुए भी एक गली, एक शहर या एक युग तक सीमित नहीं रहते. बल्कि पूरी इंसानियत का प्रतिनिधित्व करते हैं. ये आपके सामने आते हैं और अपनी छोटी-सी भूमिका निभाकर चले जाते हैं. और पीछे छोड़ जाते हैं एक सवाल— बंदों की सलामती का सवाल!

अगस्त, अंक-2 : 1980 में प्रकाशित 'हुस्नाबाई का भाषण' उपन्यास की शुरुआत थी. पहली किस्त में आपकी मुलाकात हुई थी शिवलाल से. फिर आप मिले हैदरी बी से दूसरी किस्त में और तीसरी किस्त में मिले मल्लू से. इस बार हाजिर है पंडिताइन.

● रवींद्र कालिया

कई रोज तक पंडिताइन का बाहर नल पर नहाने का ह नहीं हुआ. कोठरी में पहले से ही इतनी सीलन थी नहाकर उसे और सीलन से नहीं भरना चाहती थी. पंडित उसकी बोल-चाल बंद थी. पंडित आता तो वह चुपचप थाली देती. एक-दो बार पंडित ने कोई किस्सा सुनाकर बातची करनी चाही मगर पंडिताइन उठकर बाहर चली गयी. पंडित ने धीरे-से उसे छूने की कोशिश की तो वह ऐसे तड़कक बैठी जैसे पंडित के हाथ न हों, कोई सांप हो.

हैदरी कई दिनों से पंडित और पंडिताइन, दोनों को उखड़े देख रही थी. एक दिन उसने पंडिताइन के बालों में तेल समय पूछा, "का बात है बहू. पंडितजी से झगड़ा हो गया है

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पंडिताइन रोने लगी, "सहर में तो तुम्हीं रहि सकत हो. खाने का कोई परबंध, न पहरने का. ऊपर से हर वक्त बदमिजाज आदमी की घुड़की सुनो. मैं तो लौट जाऊंगी. देहात में कम से कम दो जून रोटी तो मिल जात है इज्जत के साथ."

हैदरी भैरूलाल के यहां काम करने की बात पर दोनों में तकरार सुन चुकी थी. बोली, "तुम पंडित की बात में न आओ. चुपचाप नौकरी कर लो, जहां वह कहता है. घर में दो पैसे आयेंगे तो पंडित जी का क्लेश भी कम होगा."

"नौकरी करने भी देवें. पहले खुद ही कहत रहे कि नौकरी कर लो. जब मैं तैयार हो गयी तो लगे अनाप-सनाप बकन."

"उसकी बात पर न जाओ. मरद ऐसे ही होते हैं. आदमी वह अच्छा है, इस बात को गांठ बांध लो. इतने बरस यहां रहा मजाल है किसी की बहू-बेटी की तरफ आंख उठायी हो."

इस बात से पंडिताइन को हल्की-सी खुशी हुई. दूसरे हैदरी ने इतना हल्का कर दिया था कि उसे पंडित की ज्यादतियों पर आने लगा.

"मेरी मानो तो एक बात कहूं. यहां बगल में मास्टर सीताराम-रहते हैं, कई बार किसी काम करै वाली को ढूंढने के लिए कह हैं. चलो तुम्हें मिलवा लाऊं."

"उनसे पूछ ल्यों तब तो."

"मैं पूछ लूंगी." हैदरी ने कहा और पंडिताइन को लगभग घसीटते हुए मास्टरजी के यहां खींच ले गयी.

मास्टरजी थोड़ी दूर पर ही रहते थे. लगभग रिटायर होने को थे. एक लड़का ए. जी. के दफ्तर में बाबू था. और दूसरा किताबों का धंधा करता था.

मास्टरजी बाहर चौतरे पर बैठे अखबार पढ़ रहे थे. दूर से ही हैदरी की आवाज सुनकर चौकन्ने हो गये.

"सलामालैकुम मास्टर साब!" हैदरी दस मीटर दूर से ही चिल्लायी.

"वालकुम हैदरी." मास्टर साहब ने चश्मा उतारकर हाथ में ले लिया और हैदरी के साथ घूंघट में किसी औरत को देखकर समझ गये कि हैदरी महरी का इंतजाम करने में सफल हो गयी है.

"अभी देहात से आयी है, इसलिए शरमा रही है. ऐसी नेक मिजाज आपको न मिलेगी मास्टर साब." हैदरी बोली, "दिन में दो बार तो स्नान करती है. हर दूसरे दिन तो इसका व्रत होता है."

"जाओ, अंदर बहूजी से मिलवा दो." मास्टर साहब ने कहा और फिर अखबार में डूब गये. मगर अखबार में उनका मन नहीं लग रहा था, दिन में कई बार वही-वही समाचार पढ़ चुके थे.

मास्टरजी हाथ में चश्मा थामे अंदर दालान में चले गये. मास्टरनी पंडिताइन से एक ही बात पर उलझ रही थी कि उसे बर्तन भी मलने पड़ेंगे. पंडिताइन इसके लिए तैयार न थी. वह खाना बनाने को तैयार थी, चालीस रुपये भी उसने मंजूर कर लिये, मगर बर्तन के नाम पर वह घूंघट निकाल लेती थी.

मास्टरजी ने पंडिताइन का चेहरा देखा तो समझ गये कि यह भी कोई मुसीबत की मारी ब्राह्मणी है. बोले, "अरे मैंने कहा, अगर बर्तन का काम नहीं करना चाहती तो न सही. तुम्हारा कुछ बोझ तो हल्का होगा.

मास्टरनी भड़क गयी, हाथ नचाकर बोली, "ठीक है, खाना तो यह नवाबजादी बनाये और बर्तन बैठकर हम मलें! इस बुढौती में मेरी यही गति लिखी थी!" मास्टरनी अचानक रूठ गयी.

मास्टरजी उठकर बाहर चले आये और चौतरे पर बैठकर पुनः वही-वही खबरें पढ़ने लगे.

पंडिताइन सादालौह औरत थी, मास्टरनी की बात से पिघल गयी. हैदरी से बोली, "बर्तन भी हम मल दें मगर पंडितजी सुनेंगे तो घर से निकाल देंगे."

"पंडित को बताना ही मत." हैदरी ने कहा और अंदर जाकर मास्टरनी के पैर दबाने लगी, "बेचारी मुसीबत की मारी है. आदमी ले-देकर सौ रुपल्ली कमाता है. उससे होता ही क्या है. यह भली औरत तो बर्तन भी मल लेती, मगर पंडित सुनेगा तो पगला जायेगा.

मास्टरनी सुबह रोज गंगा-स्नान के लिए पैदल जाती थी, और इस समय हैदरी से पैर दबवाकर उसे बहुत भला लग रहा था, बोली, "हैदरीबी, तुम सोचो. मैं तो बर्तन मलूं और यह राजकुमारी खाना पकाये."

"मैंने हल निकाल लिया है." हैदरी ने कहा, "अगर पंडित को खबर न लगे तो यह चुपचाप सब काम कर लेगी."

"एक और बात है, हैदरीबी," मास्टरनी ने कहा, "घर में दो-दो जवान बेटे हैं. ऐसी जवान औरत को रखते हुए मुझे डर भी लग रहा है."

"आपके जैसे बेटे किसके होंगे." हैदरी बोली, "अब तो शादी रचा ही दो अम्माजी. एक-से-एक रिश्ते आते होंगे."

मास्टरनी अपने बेटों की बढ़ाई सुनकर बहुत खुश हो गयी, जबकि मन-ही-मन वह बेटों से इतनी खुश न थी. अभी से वे लोग अपनी आमदनी छिपाने लगे थे. बहुएं आ जायेंगी तो एक कौड़ी भी मास्टरनी के हाथ पर न धरने देंगी.

"ठीक है हैदरी बी, अगर तुम कहती हो तो पंडिताइन को काम पर लगा लो. मगर यह उसे समझा देना कि यह मास्टर सीताराम का घर है. यहां किसी तरह की गंदगी वह न फैलाये."

अगले रोज सुबह छह बजे पंडिताइन मास्टर सीताराम के घर की सांकल बजा रही थी. मास्टरजी ही ने दरवाजा खोला. उन्होंने दरवाजा खोला और बोले, "बिटिया, इतनी जल्दी क्यों चली आयी. अभी तो घर में सब लोग सो रहे हैं."

"जब तक वे लोग जागेंगे, मैं बर्तन मल लूंगी." पंडिताइन ने कहा.

"ठीक है, ठीक है." मास्टरजी ने दरवाजा बंद किया और पंडिताइन को रसोई घर तक ले गये. कल रात लड़कों के कुछ दोस्त आये थे. घर के तमाम बर्तन नल के पास पड़े हैं. बतनों पर बहुत चिकनाई थी. पंडिताइन ने सोचा संपन्न लोगों का घर है. उसके यहां तो जूठे बर्तन नल के नीचे रख दो तो धुल जाते हैं.

मास्टर ने बड़े इत्मीनान से पंडिताइन के गाल थपथपा दिये, "मुझे दुःख है, तुम्हें बर्तन भी मलने पड़ रहे हैं."

पंडिताइन ने अपनी धोती को ठीक किया, एक नजर मास्टरजी की तरफ देखा और बर्तन मलने बैठ गयी. घर में मास्टरजी के अलावा सब लोग सो रहे थे. मास्टरनी गंगास्नान के लिए जा चुकी थी.

मास्टरजी पंडिताइन के पास खड़े होकर चाय बनाने लगे. उन्होंने दो कप पानी अंगीठी पर उबलने को रख दिया, "चाय पी लेती हो?"

पंडिताइन ने नजर उठाकर मास्टरजी की तरफ देखा और

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बोली, "देहातों में तो कोई चाय का नाम नहीं लेता. मगर देखती हूं, सहर के लोगों को इसका चस्का लग गया है."

मास्टरजी हंसे और एक गिलास में चाय बनाकर पंडिताइन को थमा दी. "लो महराजिन, तुम भी पीकर देखो."

"न न, हम चाय न पीब." पंडिताइन बोली.

"अरे पी लो. एकदम तबीयत अच्छी हो जायेगी."

"मास्टरजी, मेरी तबीयत खूब अच्छी है." पंडिताइन बोली.

मास्टरजी चाय का प्याला थामे उसके पास खड़े रहे. पंडिताइन ने साड़ी भींगने के भय से जांघों में खोंस ली. पंडिताइन ने देखा, मास्टरजी उसकी पिंडलियों को बड़ी दिलचस्पी और उत्सुकता से देख रहे थे. उसने झट से पिंडलियों पर धोती ओढ़ ली और बर्तन मलने में जुट गयी.

मास्टरजी के हाथ में चाय का गिलास कांप रहा था.

"मैंने तो बड़ी मोहब्बत से चाय बनायी थी." मास्टरजी बोले और गिलास पंडिताइन के पास जमीन पर रख दिया.

पंडिताइन ने धोती बदन पर कंबल की तरह ओढ़ ली और चलने के लिए उठ खड़ी हुई.

"तुम्हारी चप्पलें कहां हैं?"

"चप्पल हम नहीं पहनत." पंडिताइन बोली.

पंडिताइन नंगे पांव थी. उसने पैरों पर लाल आलता मल रखा था. और चांदी के पाजेब पहन रखे थे. वह छम-छम करती चली गयी तो मास्टरजी को बहुत अकेला लगा.

गंगाजी से लौटकर मास्टरनी ने देखा सुबह के अधिकांश काम पंडिताइन निबटा गयी थी. उसने लौटते ही एक-एक डिब्बा देखा कि वह क्या-क्या चीज चुराकर ले गयी है. थोड़ी मास्टरजी ऊपर आये तो मास्टरनी ने कहा, "आप मानें या मगर वह एक चोर औरत है. देखिए, चीनी और चायपत्ती कम रह गयी है."

मास्टरजी ने यह बताना उचित न समझा कि उन्होंने प्याला चाय बनायी थी. मास्टरजी को हतप्रभ देखकर ने दूध का बर्तन उघाड़कर देखा, उसकी अनुभवी आंखें हो गयीं कि दूध में भी गड़बड़ी की गयी थी.

माटस्रजी बाहर धूप की इंतजार में बैठ गये और पढ़ने लगे.

मास्टरनी देर तक कुढ़ती रही, "लगता है यह चुड़ैल बर्बाद कर देगी."

▣

अगले रोज पंडिताइन ने अभी दरवाजा भी नहीं खटखटाया मास्टरजी ने दरवाजा खोल दिया, "राम-राम बिटिया. बहू अभी नहाने गयी हैं. मैंने सोचा महाराजिन को दरवाजा खो अंदर जाऊं. दूसरे अखबार भी इसी समय आता है."

पंडिताइन अपने को समेटते हुए अंदर आ गयी. मा दरवाजा बंद किया और तेज चलते हुए पंडिताइन के बरा गये. मास्टरजी ने कंबल ओढ़ा हुआ था और अपना निकालकर पंडिताइन की पीठ थपथपाते हुए बोले, "अरे म

हिन्दी में लिखी गई विधि का पुस्तकों पर पुरस्कार

भारत सरकार प्रत्येक वर्ष हिन्दी में लिखी गई विधि की पुस्तकों पर १०,००० रु० के दस पुरस्कार देती है. १९८० के पुरस्कार पाने के लिए १९८० में लिखी गई पांडुलिपियां या प्रकाशित पुस्त १५ जनवरी, १९८१ तक पहुंच जानी चाहिए.

पूर्ण विवरण और विहित प्रवेश-पत्र के लिए निम्नलिखित पते पर लिखें:—

प्रकाशन और विक्रय प्रबन्धक

विधि साहित्य प्रकाशन

विधि, न्याय और कम्पनी कार्य मंत्रालय,
विधायी विभाग,
भगवान दास मार्ग,
नई दिल्ली - ११०००१

डीएवीपी ५९६(३)/

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जाड़ा भी नहीं लगता? माघ महीने में भी तुम बिना गर्म कपड़ों ..."

पंडिताइन ने धोती के अंदर ही अपनी दोनों बाहें छिपा रखी मास्टरजी के कंबल से निकले गर्म हाथ उसने अपनी ठंडी पीठ हसूस किये और जल्दी से सीढ़ी चढ़ गयी. मास्टरजी का आज ाय पीने का इरादा हो रहा था, मगर जिस घर में चायपत्ती, इस तरह तोल-नापकर रखी जाये, वहां कोई चीज भी क्या कता है. उन्हें मास्टरनी पर बहुत क्रोध आया, यह मैं ही था कि बरस निभा ले गया. दस-दस घंटे ट्यूशनें कीं, मगर कभी एक भी जेबखर्च न बचाया. यह औरत है कि इसे चीनी, दूध जात से भी ज्यादा प्रिय है.

मास्टरजी का मूड ऑफ होता चला गया. मास्टरजी अपना तभी तक ऐसा रखना चाहते थे जब तक बच्चे न जग जायें मास्टरनी स्नान से न लौट आयें. आखिर जब उनसे और न गया तो कमरे में टहलने लगे और कुछ ही देर बाद वह अच्छी से कंबल ओढ़े पंडिताइन के पास जा खड़े हुए. इतना पास खड़े ये कि जैसे मास्टरजी ने पंडिताइन के बैठने के लिए अपने पैरों टरा रख दिया हो. मास्टरजी ने पांव में गर्म मोजे टांग तक चढ़ा थे. पंडिताइन को लगा मास्टरजी के पैर सुलग रहे हैं. उसने ही मन सोचा कि मास्टरजी को कोई रोग है और ये कोई अच्छा भी नहीं है.

"मैंने अपनी जिंदगी के बयालीस वर्ष इस घर को खड़ा करने में दिये. अब जाकर इतमीनान हुआ. दोनों बच्चे पढ़-लिखकर न हो गये. मकान खरीद लिया. अब चिंता है बहुओं की. न कैसी आती हैं, आजकल की लड़कियों से तो भगवान ही बचाये."

...जी पटरा हिलाते हुए बोले.

पंडितजी के पैर लगातार जुंबिश कर रहे थे. पंडिताइन और सरक गयी. लगभग उसी गति से कच्चे धागे से बंधे ...रजी के पांव भी. आखिर पंडिताइन से बर्दाश्त न हुआ, उसने तीखी नजर से मास्टरजी की तरफ देखा और पटरे से उतरकर मलने लगी. मास्टरजी ने अनुमान लगाया कि पंडिताइन ...द पहलू बदलना चाहती हैं. इस बार फिर उन्होंने पटरे की ...का निभानी चाही तो पंडिताइन उठकर खड़ी हो गयी, "यह करत हो मास्टरजी."

"कुछ नहीं, कुछ नहीं." मास्टरजी ने कहा, "अब टांगें भी साथ दे रही हैं. खड़ा होता हूं तो पैर कांपने लगते हैं. बैठता हूं तो पड़ जाते हैं."

"आप भी गंगास्नान किया करो." पंडिताइन ने कहा, "हमने ...गी में कभी दूसरे का जूठन नहीं मला. पंडितजी को भनक भी गयी तो कान पकड़कर देहात रवाना कर देंगे."

मास्टरजी को कुछ न सूझा, बोले, "नीचे जाकर देखता हूं कि ...ार आ गया है कि नहीं."

पंडिताइन ने उनकी बात की तरफ कोई ध्यान नहीं दिया. कुछ ...ों में उसे हड्डियां-सी दिखाई दीं. उसने चिमटे से बर्तन नाली तरफ ठेल दिया और खूब साबुन मल-मलकर हाथ धोये.

...डिताइन कपड़े धो रही थी कि मास्टरजी का बड़ा लड़का ...ता-भागता आया और बोला, "देखो मिसरानी, कहीं हमारी जेब ...छ रुपये तो नहीं हैं?"

इससे पहले कि पंडिताइन कुछ जवाब दे, लड़के ने झट से अपनी एक बुशर्ट अधभीगी उठा ली और जेब से नोट निकालते हुए लौट गया, "अब अगर रेजगारी भी है तो वह तुम्हारी." उसमें सचमुच रेजगारी भी थी, लगभग डेढ़ रुपये की. पंडिताइन ने यह सोचते हुए धोती के पल्लू में गठिया ली कि हलाल की कमाई है, चोरी की नहीं है.

पंडिताइन कपड़े फैला रही थी जब मास्टरनी गंगाजी से लौटीं. लौटते ही उन्होंने बहुत तीखी नजरों से पंडिताइन का ऊपर से नीचे तक जायजा लिया और रसोई में जाकर चायपत्ती, चीनी, दूध आदि की पड़ताल की और बाहर तख्त पर बैठ गयीं.

पंडिताइन तार पर कपड़े फैला रही थी. तार जरा ऊंचा टंगा था. जितनी बार वह कपड़ा फैलाती, उसका वक्ष ब्लाउज के नीचे से उभर आता, मास्टरनी ने दो-तीन बार तो बरदाश्त किया. और आखिर टूट ही पड़ीं, "हम लोगों के घरों में यह सब न चलेगा बहू."

पंडिताइन ने मास्टरनीजी की तरफ मुड़कर देखा और पूछा, "का?"

"यह दूध की नुमाइश यहां नहीं चलेगी. दो-दो जवान बेटे हैं घर में. कल को कुछ हो गया तो?"

पंडिताइन की समझ में बात आ गयी और बोली, "हम गरीबन को ऐसी नजर से न देखो अम्माजी. भूखे रह लेंगे. ऐसा न सुनेंगे."

"बड़ा घमंड है पंडिताइन!"

"गरीब आदमी क्या खाकर घमंड करेगा अम्माजी. मैं तो सहर भी न आती, मेरी ही मति फिर गयी थी."

तभी मास्टरजी का लड़का अंदर से आया और बोला, "अम्मा, आज दो सौ रुपये कमीज में ही धुल जाते. महराजिन ने लौटा दिये."

"दो सौ ही थे?"

"हां, हां, दो सौ ही थे." लड़का बोला, "लगता है यह औरत चोर नहीं है."

मास्टरनी को यह बात अच्छी न लगी. पैसे मिल ही गये थे तो नौकरों-चाकरों के सामने इसका बखान करने का क्या मतलब. जबकि इस बुढ़ापे में पहली बार उसे नौकर से काम लेने का अवसर मिला था.

"अच्छा-अच्छा, जाओ, अंदर जाकर काम करो. तुम्हारा यहां कोई काम नहीं." दरअसल बहुत संभालते हुए भी पंडिताइन का दूध पुनः ब्लाउज के बाहर झांक रहा था. मास्टरनी नहीं चाहती थी, उनके बेटे की नजर से वह भी छू जाये.

मास्टरनी ने सोचा अपना कोई पुराना लंबा ब्लाउज जल्दी ही इस औरत को दान देना पड़ेगा. **क्रमशः**

अगली किस्तः

"तुम्हारी तमाम वैल्यूज़ तुम्हारी नौकरी में घुस गयी हैं. तुम्हारी पूरी कांशंस तुम्हारी नौकरशाही ने लील ली है. तुम्हारा पूरा पतन हो चुका है!" शर्माजी की इस तेजबयानी से हम आपका परिचय करा रहे हैं 'सारिका' जनवरी-81, अंक-एक यानी 'प्रेमकथा विशेषांक' में. अपनी प्रति अभी से बुक करवा लीजिए.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भटकती वावव

• दामोदर खडसे

मेरी अकाल मृत्यु मेरे जीवन की अंतिम घटना थी. अंतिम विराम था. लोग मेरे शव को घेरे खड़े थे.

ये सभी तीर्थ के लिए आये थे, पंढरपुर.

मेरा अचानक देहावसान सबके लिए आश्चर्य का विषय था.

मुझे चिता पर रख दिया गया. लोग लगातार मेरे संबंध में चर्चा करते रहे. चूंकि मैं हर साल यहां आता था, इसलिए मेरे गांव के अलावा अन्य गांवों से आने वाले तीर्थ यात्रियों से भी मेरा अच्छा परिचय हो गया था. वे मेरे बाहरी व्यक्तित्व से ही परिचित थे.

"बहुत ही सज्जन आदमी था."

"जीवन में सब कमाया इसने...इज्जत, पैसा, शोहरत."

"क्या मौत पायी है—शांत, चुपचाप, पूर्णता लिये हुए...."

"मौत, वह भी पंढरपुर में! आषाढ़ी एकादशी के दिन!"

"सब पिछले जन्मों के पुण्य और इस जन्म के सदकर्मों का फल है भइया...."

मैं सब चुपचाप सुन रहा था. कर भी क्या सकता था. लेकिन जिन स्थितियों के बीच मैंने अंतिम सांस ली, बड़ी अजीब थी. और बड़ी अजीब थीं मेरी यात्राएं भी. मुझे इस तरह की यात्राओं और देव-दर्शनों में कतई विश्वास नहीं था. परंतु जब विधवा यमुनाबाई तीर्थ के लिए पैदल चली, तो मेरे पांव भी इधर मुड़ गये. पिछले बारह सालों से मैं इधर आता रहा. वैसे यमुनाबाई का सहवास सिर्फ चार साल रहा. बाद में, मैं लोगों पर श्रद्धा जताने आया करता.

कभी-कभार मेरे व्यवहार पर काना-फूसी होती. मैं भजन-मंडली के सारे खर्च स्वयं उठा लेता! लोग मेरी नयी योजना मान लेते, मैं मंडली को एकाध सुविधा और बहाल कर देता....

कल मैंने खाना खाया. भजन-कीर्तन में हिस्सा लिया. पर पेट में मंजीरे टकराते रहे. छाती में ढोलक-ताल गूंजती रही. गले में हारमोनियम घर्राता रहा. कानों में झांझ झनझनाने रहे....इन हालातों को, अपने जिस्म पर लादे मैं सोने की कोशिश कर रहा था. आंख लगी नहीं कि सारे जिस्म को एक भयानक सपने ने धर दबोचा .....मैं बेतहाशा भागा जा रहा हूं, क्योंकि एक खूंखार शेर मुझे दबोचने ही वाला है.....यह क्या? मेरे पैर जमीन से चिपक गये. शेर के भूखे दांत और पंजे जब तक मुझे छूते, मैं उड़ने लगा....! ऊंचा.....बहुत ऊंचा. शेर पिछली टांगों पर बैठकर मुझे ताकता रहा....मैं अचानक धड़ाम से शेर के सामने गिरता हूं. शेर एकटक मुझे देखता है, मानों वह जिंदा नहीं, मसाला भरा हो. तभी वह अचानक सुशील में बदल जाता है....

.....सुशील मेरा भांजा. हांफ रहा है वह. उसकी आंखें पथरा रही हैं. उसके मुंह से खून-सना झाग निकल रहा है. उसने एक डरावनी हिचकी ली.....इधर मेरी आंखें खुल गयीं.

मैं हांफ रहा था....चेहरे पर हाथ फेरा तो गरम-गरम कुछ बह रहा था मुंह से मेरे खून आ रहा था.

मैंने अपनी आंखें छुईं. बड़ी गर्म थीं, कांच-सी कठोर. ठीक शेर की आंखों की तरह खूंखार.....सुशील की आंखों की तरह तेज, चुभती हुई. सिर्फ आंखें जल रही थीं और सारा शरीर लुंज-पुंज पड़ा था... ठंडे लोहे की तरह.

मेरे छटपटाकर उठने से मेरे आसपास सोये सभी लोग जाग गये. उन्होंने मुझे सहारा दिया. पर एक हिचकी आयी और कुछ करने से पहले खूंटी पर टंगी झांझ पर ज्यों कोई कंकड़ गिरा हो, वैसा ही जिस्म में एक झटका आया, ठीक झांझ की तरह धीरे-धीरे मैं चुप हो गया...!

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"क्या हुआ?.....अरे, कैसे हुआ यह ब.....?" लोग एकत्र होने लगे.

"कुछ नहीं साब, हार्टफेल हो गया.... आजकल की नयी-नयी बीमारियां हैं."

"सब ऊपरवाले की माया है."

"जिसके दिन पूरे हुए, उसे तो जाना ही है..?"

और मेरी शव-यात्रा शुरू हुई.

वैसे मेरी शव-यात्रा सुशील के मरने के दिन से ही शुरू हो गयी थी. उधर सुशील को जिला अस्पताल में मृत घोषित किया गया, इधर मैं छिपने के लिए जगह ढूंढ़ रहा था. प्रत्यक्ष रूप से बच निकलने में सफल तो हुआ, पर पड़ोसियों ने, सुशील के घर, उस रात जो झगड़ा सुना, उसे प्रतिक्रिया सहित चारों ओर प्रसारित कर दिया—'देखो टुंडे की करामात'. और मेरा कटा बायां हाथ, सूअर के नथुनों-सा फड़फड़ा रहा था. मेरे अपने ही अतीत के गटर में..."

उन दिनों बीवी अपने भाई के परिवार के साथ भ्रमण पर गयी थी, एक महीने के लिए.

मेरी एक टॉकिज थी. जहां मैंने सुशील को टिकट बुकिंग के काम पर लगा दिया था. गत दिनों उसे शराब की बुरी लत लग गयी, वह देर रात गये घर आता.

तीन साल का एक बच्चा था उसे. उसे उम्मीद से ज्यादा सुंदर बहू मिल गयी थी, देखने में. वैसे कान की बालियों को लेकर वह लगन-मंडप में ही मुंह फुलाये बैठी थी...

लोग मेरे सिर के फटने की प्रतीक्षा कर रहे थे. मेरी अधजली लाश पर लोगों ने थोड़ा-सा घी डाला, सिर पर कुछ अधिक. मेरी जलती लाश छोड़ सब वापस लौट गये.

उन्हें नहाना-धोना होगा. ..भजन-कीर्तन में जुटना होगा. यहां मेरी अकेली अधजली लाश और लकड़ियां, अंगारे और नदी का सुनसान किनारा. आकाश के अस्तित्व को ललकारती तेज लपटें और मुझसे उठता धुआं. ..मेरे आसपास आग के गोले कितने प्यारे लगते हैं, मेरी इस ठंडी देह को. कितनी चमक है इन अंगारों में...

ऐसी ही चमक उस दिन सिगड़ी के कोयलों में थी, सुमति ने उस पर तवा रख दिया. सारी चमक उसके चेहरे में सिमट आयी थी. मैं उसे देख रहा था. ..उसने मेरी ओर आंखें उठायीं, मैं सहम गया. सिर को एक झटका दिया और सारे दुमदार कीड़े दिमाग के दरवाजे बाहर भगाये.

पत्नी के जाने के बाद जब मैं अकेला था, तो खाने-पीने की बड़ी असुविधा थी. एक दिन सुशील ने कहा, "भई अपनी भाभी के आने तक तुम सब मेरे पास आ जाओ. मेरा भी जी बहल जायेगा. बच्चे से खेल लूंगा. ..तुम्हारी टॉकीज भी नजदीक रहेगी. ..मैं साफ-साफ था, उस वक्त. ..ऐसी-वैसी कोई बात मेरे दिमाग में नहीं थी.

सुशील राजी हो गया. सुमति और बच्चा मेरे घर आ गये. घर में कुछ चहल-पहल हुई. बाद में मैं ही हिसाब पर उतर आया—इन लोगों का, महीने भर का घर-खर्च बच गया. मुझे अपने खाने-पीने की सुविधा महंगी लगी. सुशील बहुत देर गये घर आता. बुकिंग का हिसाब तो रात साढ़े दस तक हो जाता, पर वह बाद में धुत्त होने तक पीता. ..मैंने कई बार उसे टोका. वह हंसकर आंखें झुका लेता. .. दिनों-दिन उसकी हालत गिर रही थी. चलती-फिरती लाश रह गया था वह...

▣

अभी-अभी श्मशान घाट में एक और लाश आयी है. बिल्कुल मेरी चिता के पास ही उसकी चिता बिछ रही है. किसी औरत की लाश है यह. दो जवान और एक बूढ़ा अपेक्षाकृत अधिक दुखी दीख रहे हैं. शायद बेटे और पति हों. बाकी सब बड़ी तेजी से अंत्यविधि निपटाने में व्यस्त हैं. लाश बड़ी शांत और संतुष्ट लगती है—उसके बेटे जो उसे अग्नि दे रहे थे.

मैं भी बेटे के लिए तरस गया. दोस्त छेड़ते. बुजुर्ग सलाह देते. मेंहदी की हरी फेंसिंग रेगिस्तान-सी सूख गयी और मैं प्यासा ही रह गया...

एक हाथ न होने की वजह से अच्छी लड़की मुझसे ब्याही न जा सकी. पहले तो मैं वहीं सूख गया, क्योंकि सपने बड़े ऊंचे थे. शायद सबके रहते होंगे. पर मेरे कटे हाथ ने मेरे सपने भी छांट डाले. और मेरा कटा-छंटा दैनिक जीवन, मेरे दांपत्य जीवन से कभी समरस नहीं पाया. कटा-कटा रहा मैं. धीरे-धीरे आदत हो गयी.

पर आये दिन मेरी 'पराजय' किसी कमजोर 'फौज' को देखकर तलवार उठा लेती. मैं 'विजयी' भी हुआ. यमुनाबाई जैसे उदाहरण मेरे खाते में जमा हैं. उस रात मैं बाथरूम गया. मेरा बाथरूम ब्लॉक के पिछवाड़े बाहर की ओर खुलता है. मैं बाथरूम से बाहर निकलते ही किचन में लाइट देखता हूं. किचन में गया तो सुमति पानी पी रही है. बिना मुंह लगाये वह गिलास से पानी ढुलका रही है. उसकी देह पीछे की ओर मुड़ी थी. कमान-सी देह पर पानी की लकीरें होंठों और छाती से होते हुए नीचे उतर रही थीं... मैं भी पानी की लकीर के साथ उतर रहा था. मैं देखते-देखते डर रहा था, डरते-डरते देख रहा था. दृश्य बड़ा डरावना था, भीतर से. मैं इसी डरावने उधेड़-बुन में था कि सुमति ने मेरी ओर देखा. हंस दी. वैसी ही खड़ी रही. मैं बगलें झांक रहा था. वह बोली, "पानी दूं?"

मैं थूक निगल रहा था. कुछ कहने से पहले उसने पानी का गिलास मेरी ओर बढ़ाया और मैं उसकी पानीदार आंखों में...सब भूल गया मैं... शैतान मुझे संचालित कर रहा था शायद. मेरे शैतान के लिए यह सब विशेष नया नहीं था... पर सुमति के लिए?

दूसरी लाश भी लोग जलाकर चले गये. एक-एक आदमी दबे कदमों से श्मशान घाट से निकल रहा था, बस्ती की तरफ...जीने के लिए...डरे हुए...निर्वेद का बोझ लिये...पर श्मशान की सीमा पार करते ही अपने-अपने रुचि के मुद्दों में सब व्यस्त हो गये.

चिता धू-धू कर जलने लगी. उसकी लपटें लपलपाने लगीं. लपटों की पांतें खजूर के पत्तों-सी फड़फड़ाने लगीं.

किचन में मेरा भी इकलौता हाथ फड़फड़ाने लगा था...सुमति की नजरें जमीन में धंसी थीं. जैसे ही मैं खड़ा हुआ, सुशील के खयाल में मेरा सारा अस्तित्व उलझ गया. पर अब क्या...बाढ़ निकल जाने के बाद यह सब...मात्र सोच की विभीषिका... सड़ी हुई लाशें... दुर्गंध...'काश, बांध फूटने से पहले मैं कुछ कर पाता'...वाला पश्चाताप दबे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लघुकथा

टाइपिस्ट ▪ महेश दर्पण

दोनों बचपन से साथ-साथ खेलते-कूदते बड़े हुए थे. पेशे से अलग-अलग हो गये, पर बचपन की आत्मीयता भला कहां जाती! सो, जब उसके मित्र ने उपन्यास लिखा तो उसे टाइप करना ही था.

मित्र की पहली किताब छपने पर उसकी खुशी की कोई सीमा न थी. अपनी तरफ से उसने पूरी ईमानदारी और सावधानी से टाइप किया. मित्र भी खुश था, "तुम्हारा नाम, मैं भूमिका में ही आभार ज्ञापित करते हुए दूंगा. . .और हां, जल्दी ही पेमेंट भी हो जायेगा तुम्हारा."

"अरे नहीं यार, तू कैसी बातें कर रहा है. तेरी किताब में मेरा इतना भी हक नहीं कि बगैर कुछ लिये ही टाइप कर सकूं." उसने उत्साहित होकर कहा.

कुछ ही दिनों बाद, जब उसे उपन्यास प्रकाशित हो जाने की खबर मिली, तो वह दौड़ा-दौड़ा मित्र के घर जा पहुंचा.

"अरे वो किताब तो दिखा यार, छप भी गयी और तूने बताया तक नहीं. . . .!"

मित्र से किताब लेकर उसने पलटनी शुरू कर दी. भूमिका पढ़ते ही उसकी आंखें एक जगह जड़ हो गयीं—

'यह पुस्तक. . . . .प्रकाशन संबंधी अशुद्धियां टाइपिस्ट की असावधानी से रह गयी हैं.'

किताब थामे वह भारी कदमों से वापस आ गया. □

कदमों से मेरे भीतर-बाहर पहरा दे रहा था. रात भर नींद नहीं आयी.

सुशील भी नहीं आया.

सुमति, चाय देते वक्त जरा हिचकिचायी.

मेरी चिता के अंगारे बुझ रहे थे. अंगारे अब राख की चपेट में थे.

मैं सोच रहा था, सुशील के परिवार को लौट जाना चाहिए. पर मैं कैसे कहता.

संघर्ष भीतर पनपता जा रहा था. रातें बदतर होती जातीं. मैंने अपने-आप को फुसलाने का क्रम शुरू किया—'मैंने कोई अत्याचार नहीं किया, जबरदस्ती नहीं की'.

एक दिन मैंने सुमति के लिए कान की बालियां ला दीं और हल्का हो लिया. बालियां उसके कानों में झूमने लगीं.

सुशील ने एक दिन उससे बालियों के बारे में पूछा तो कितनी सहजता से उसने कह डाला था, "घर खर्च के लिए जो देते थे, उसी से बचाकर मैंने यह खरीदा. आप तो कभी ध्यान ही नहीं देते. . ." और अपनी बालियों को छूकर वह इतरा रही थी. मैंने सुमति के चरित्र से अपनी तुलना करने की कोशिश की. वह कहीं अधिक चालाक और खुदगर्ज दीख रही थी.

उधर सुशील का चेहरा कसैला हो गया था. उसके आंखों में झाईं की एक और परत चढ़ आयी थी. वह कुढ़ता जा रहा था. . . शराब उसे पीती जा रही थी.

पत्नी घर आयी और मुझे राहत मिली. सुशील का परिवार वापस लौट गया. मेरी उत्तरार्ध रातें उतनी बोझिल नहीं थीं.

सुबह के चार बजे होंगे, ठंडी हवा बह रही है. मेरी राख हवा में घुल रही है. उस दिन भी सुबह के चार बजे होंगे. मुझे गहरी नींद से जगाया गया था. 'सुशील की मौत हो गयी. . . उसने आत्म-हत्या कर ली'—दरवाजे पर दस्तक थी.

लगा, मेरे प्राण उड़ गये. सुशील ने मेरा पिंजरा छीन लिया. मैं रिश्तेदारों के झुंड में दुबका बैठा रहा था.

कहते है, उस रात सुशील घर आया था. पीकर धुत्त. जोर-जोर चिल्ला रहा था.

"बोल साली, किसका पाप पाल र[ही] है. . . ?" और पीटता जा रहा था. दो-[चार] नाम उसने अपनी ओर से गिनाये. को[ई] चारा नजर न आते देख सुमति ने उग[ल] दिया—"मामा!"

सुशील ढोर की तरह चीखा था. .

सुबह सबने देखा सुशील नहीं र[हा]. उसने आत्महत्या कर ली. . .शराब [में] एंड्रीन मिलाकर पी गया था वह. सु[बह] जब उसे पोस्टमार्टम के लिए ले जा र[हे] थे, तब सुमति ने सुशील की जेब से [बचे] पैसे भी निकाल लिये. लोग सुमति पर [थू] थू कर रहे थे और मुझ पर आश्चर्य!

आश्चर्य तो मुझे भी मुझ पर हुआ. उम्र [भर] जिसके लिए तरसता रहा, वह एक 'अपरा[ध'] से पैदा होने की तैयारी करे. . . ?

पता नहीं, वह पैदा हुआ भी या न[हीं]. आज मेरी तपती राख ठंडी हवा में घ[ुल] रही है. मुझे लगता है, वे कोमल न[न्हीं] उंगलियां मुझे सहला रही हैं. मेरी रा[ख] पर वे नन्हें हाथ फिर रहे हैं. मेरी तप[ती] उम्र को कितनी ठंडक महसूस हो रही [है]. वह मेरी दाढ़ी नोंच रहा है, खुरदुरे चे[हरे] पर हाथ फेर रहा है. लाड़ में आकर [मैं] आंखें मूंद लेता हूं. वह, नन्हीं उंगली मे[री] आंख में ठूंसता है. . . देखते-देखते मे[री] आंखों में वे उंगलियां झुलसने लगती [हैं]. उसकी नन्हीं आंखों में ज्वाला है. . .प्रति-शोध है, जिसकी भयानकता में मेरी आ[ंखें] पथरा जाती हैं.

एक नवजात चेहरा, एक गूंगी चीख [के] साथ अंतराल में धुआं-सा फैल जाता [है].

भोर का उजाला आते ही, एक श्मशा[नी] कुत्ता, खुजलाता हुआ मेरी ओर बढ़[ता] है. मुझे लगा, सुशील अब भी मेरे पीछे [है]. वह कुत्ता फें-फें कर रहा है, झाग नि[कल] रही है उसके मुंह से.

मेरी आंखें चौंधिया गयीं, जैसे वे ज[ल] ही न हों. मैं आंखों से परेशान हो उठता [हूं].

कुत्ते की धंसी आंखें मेरी आंखों [की] तलाश में थीं. वह राख की आंच से कु[न]मुनाता, पर तलाश जारी रखता.

अचानक उसने कुछ अंदाज लगा[या और] अपनी पिछली एक टांग ऊपर कर दी. . मुझे लगा मेरी आंखों को एंड्रीन पिला[या] जा रहा है. . .!

● बैंक ऑफ महाराष्ट्र, अंचल कार्यालय, तीसरी मंजिल, सीताबर्डी, नागपुर.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रसंगवश

निराशा से उबरने की कहानी

लेखक के लिए यदि ज्यादातर समय चढ़ाव का होता है तो कभी उसमें उतार भी आता है और सही तथा कभी-कभी गलत या मामूली-से कारणों से भी वह बहुत उदास हो उठता है और टूट तक जाता है. यह अनुभव सब नहीं तो अधिकांश लेखकों को अपने जीवन में एक या इससे अधिक बार अवश्य होता होगा, परंतु ऐसे कितने हैं, जिन्होंने इसी को विषय मानकर किसी कृति की रचना की हो. जहां तक ज्ञात है, प्रायः किसी ने भी ऐसी रचना नहीं की है.

इस प्रकार की पहली चीज जो देखने में आयी मे सार्टन की गत दिनों ही प्रकाशित 'रिकवरिंग' है, जिसमें उसने गहरी निराशा से उबरने की अपनी कहानी विस्तार से कही है. मे सार्टन अच्छी कवयित्री तथा उपन्यासकार हैं, परंतु 1978 में उन्हें कई कठिनाइयों से गुजरना पड़ा था. इनमें बीमारियां तो थीं ही, अपने नवीन उपन्यास 'ए रेकनिंग' की 'न्यूयार्क टाइम्स' में प्रकाशित तीखी आलोचना भी थी, जिसने उनके मन को बड़ी चोट पहुंचायी. वे बहुत व्यथित हो उठीं और महीनों अवसाद से ग्रस्त रहीं. अंत में, इस सबसे छुटकारा पाने के लिए उन्होंने कलम की ही शरण ली और जर्नल के रूप में धीरे-धीरे यह चीज लिखती रहीं. इससे उन्हें सचमुच राहत मिली और उनका मन स्थिर हो आया.

इस मार्मिक कृति में लेखक, उसके कृतित्व, समाज से उसके संबंध, स्वीकृति तथा निरादर, प्रेम, बढ़ती हुई उम्र और बदलता हुआ समय, एकाकीपन, स्त्री, पुरुष, संतान, जीवन का अर्थ आदि सभी विषयों पर अनुभव से मंजे हुए विचार व्यक्त किये गये हैं. ▣

'नरक के ऊपर का आसमान' अर्थात बदसूरत कहानियां

रूस तथा अन्य देशों की कम्युनिस्ट व्यवस्था से अनेक लेखक जब-तब बाहर निकलकर अपनी रचनाएं दुनिया को दिया करते हैं. इस तरह का नया महत्त्वपूर्ण लेखक यूरी मामलेयेव है, जो कुछ समय पूर्व ही अमेरिका में आकर बस गया था. सात कहानियों का उसका पहला संग्रह 'दि स्काई एबव हैल एंड अदर स्टोरीज' के नाम से हाल ही में प्रकाशित हुआ है. 'नरक के ऊपर का आसमान' शीर्षक से ही उसकी वास्तविकता जाहिर हो जाती है.

इसमें एक छोटा उपन्यास 'शातुनी' तथा छह औसत लंबाई की कहानियां हैं. कहानियों में जिंदगी कितनी भयंकर हो सकती है, इसकी दास्तानें हैं. सैडिस्टों का एक दल 'शातुनी' को किस प्रकार त्रस्त किये है, यह चित्रित किया गया है. एक कहानी में एक युवक पर पशु-व्यभिचार का आरोप लगाया गया है और बदले में वह आरोप-कर्ता पर अपने पिता के साथ व्यभिचार करने का आरोप सार्वजनिक रूप से लगा देता है—और दोनों ही आरोप सही हैं. एक और कहानी में एक सिपाही रेप करता है और उसे फायरिंग स्क्वैड के सामने खड़ा कर दिया जाता है. लेखक के ही अनुसार इन चरित्रों की आत्मा में मृत्यु बस गयी है. बदसूरत कहानियों के ये अन्यतम उदाहरण हैं, परंतु ये उन परिस्थितियों की ओर इंगित करती हैं, जिनके कारण सादी-सरल जिंदगियां इस हद तक गलीज हो सकीं. ▣

एक और बदसूरत अनुभव का रचनात्मक उपयोग

एक और बदसूरत अनुभव की रचना शार्लट वान एलेन का उपन्यास 'डैडी'ज़ गर्ल' है, जिसमें लेखिका ने ऐसी स्वानुभूत कथा कही है, जैसी अब तक शायद ही किसी ने कही होगी—और जिसे कहने के लिए बहुत बड़ा कलेजा चाहिए.

शार्लट का पिता उसके साथ तब से व्यभिचार करता रहा, जब वह दस साल की थी और इसके लिए वह उसे शुरू में टॉफी-चॉकलेट तथा बाद में कीमती चीजें देता रहा. बचपन में तो वह इसे समझती ही नहीं थी, जब समझ पैदा हुई तो वह छटपटाने और इससे छूटने का प्रयत्न करने लगी, परंतु छूटना बहुत आसान नहीं साबित हुआ. शार्लट का व्यक्तित्व बहुत बिखर गया, परंतु उसने हिम्मत नहीं हारी और सामान्य ढंग से जीवन में स्थिर होने का प्रयत्न करती रही. जब उसका विवाह हो गया, अपना घर बन गया और बच्चे भी हो गये—तब उसने यह किताब लिखी है. यह भी सामान्य होने के उसके प्रयत्न का एक अंग ही है. ▣

लोग कैसे मरते हैं या दुनिया के जाने-माने लोग कैसे मरे?

लोग कैसे मरते हैं या दुनिया के जाने-माने लोग कैसे मरे, क्या इस पर भी कोई रचना हो सकती है? जी हां, और बॉब आर्नबेक ने 'प्रस्त'स लास्ट बियर—ए हिस्ट्री ऑव क्यूरियस डिमाइजेज' नाम से प्रकाशित अपनी रचना में इस विषय को पहली बार उठाया है.

पुस्तक विस्तृत शोध पर आधारित है. मरने के ढंगों पर अध्यायों का विभाजन किया गया है. जैसे 'शानदार मौतें', 'जानकारियां : जिन्होंने जान ली', 'सिर हिलाकर मर गये' आदि. प्रूस्त ने अपने अंत समय में बियर की मांग की; चेखव ज्यादा कीमती चीज शैंपेन पीकर मरा. चार्ल्स प्रथम जब फांसी के लिए ले जाया गया, वह खास ढंग के कपड़े पहने हुए था, जो उसने इसी अवसर के लिए बनवाये थे. काले साटन का कुर्ता-पाजामा, मोतियों के बुंदे और हाथ में सोने की घड़ी. एक डॉक्टर जब कालरा पर लेख लिखने लगा, तभी उसे कालरा हो गया और दूसरे दिन वह मर गया.

पुस्तक में लेखक ने बहुत से व्यक्तियों की मृत्यु का जिक्र किया है. कई सीधे-सादे ढंग से मर गये, कई मरते-मरते दुनिया को परेशान कर गये. मौत जिंदगी का जरूरी हिस्सा है, इसलिए जिंदगी की तरह उसका भी अध्ययन आवश्यक है. □

● महेंद्र कुलश्रेष्ठ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

क्रिसमस के अवसर पर एक जर्मन कहानी

सफेद रा

• फिरटर विंकरी

बात 1944 की है. मैं उन दिनों बहुत छोटा था, लगभग बारह वर्ष का. महायुद्ध का समय था. मैं और मम्मी एक घने जंगल में रह रहे थे. यह जंगल जर्मनी और बेल्जियम की सीमा पर स्थित था. मेरे पापा शिकार के शौकीन थे. उन्होंने दूसरे महायुद्ध से पूर्व जंगल में एक कॉटेज बनवा लिया था. मैं और मम्मी उस कॉटेज में रह रहे थे. वैसे हमारा घर शहर आशन में था. मित्र-शक्तियों द्वारा बमबारी के कारण वह खंडहर हो चुका था. इसलिए पापा ने मुझे और मम्मी को कॉटेज में भेज दिया.

मेरे पापा मोंशाऊ कस्बे में रुकने पर मजबूर थे. कस्बा मोंशाऊ चार मील दूर था. पापा नागरिक सुरक्षा के आग बुझाने वाले दस्ते में शामिल थे. महायुद्ध जारी था. इसलिए मुझे और मेरी मम्मी को अकेले छोड़कर पापा को मोंशाऊ में रुकना पड़ा. हमसे विदा होते समय वह मुस्करा रहे थे. उन्होंने मुझसे कहा था, "विटसकन! अब इस परिवार के संरक्षक तुम हो. अब अपनी मां की रक्षा का दायित्व तुम्हारा है. मुझे उम्मीद है, तुम लोग आबादी की अपेक्षा इस वीराने में अधिक सुरक्षित रहोगे."

हमें कॉटेज में आये नौ दिन बीत गये थे. इस अंतराल में कुछ भी नहीं हुआ था. मैं समझा कि शायद अब शांति हो गयी है. मैंने अपना अधिकतर समय घने जंगल में बिताया था. मासूम पक्षी मुझसे घुल-मिल गये थे. और वे मेरे बहुत अच्छे मित्र साबित हुए.

एक रात बर्फ गिर रही थी. रुई के नन्हे-मुन्ने गोले तैर रहे थे. तैरते-तैरते वे हर ओर बिखर जाते. क्रिसमस की रात थी. मैं कॉटेज की खिड़की से देर तक यह उदास दृश्य देखता रहा. अगर आज हम अपने घर होते, तो सारा घर नववधू की तरह सजा होता. हम हर वर्ष क्रिसमस की शाम बहुत रंगीन और शानदार तरीके से मनाते थे, पर आज हमारा बसेरा एक वीरान, सुनसान जंगल में था. और बाहर सारा संसार युद्ध की लपेट में था. आकाश आग बरसा रहा था और दूसरी ओर जंगल में बर्फ गिर रही थी. अंधेरा बढ़ रहा था. और सबसे बुरी बात यह कि मैं और मम्मी अकेले थे. पापा आज हमारे पास नहीं थे. धीरे-धीरे जाड़ा और अंधेरा बहुत बढ़ गया था. मैं खिड़की से हट आया. दो दिन पहले तक मैंने जंगल से सूखी लकड़ियां चुनी थीं. अंगीठी उन्हीं से गर्म थी, और प्रकाश भी हो रहा था. सुनहरे शोले भले लग रहे थे. मम्मी ने लैंप जला था. मैं और मम्मी देर तक लैंप के के पास बैठे रहे. पिछली शामों की आज शाम भी पापा के आने की नहीं थी. कुछ दिन पूर्व फील्ड-मार्शल इंडस्टत ने आखिरी लड़ाई में पूरी प झोंक दी थी. मित्र शक्तियों के यह आखिरी युद्ध हमारे जंगल के ही एक फ्रंट पर चल रहा था. सर्चल की तेज-नुकीली कटारें रातभर का सीना चीरती रहती थीं. बम विमान चिंघाड़ते हुए हमारे सिर गुजरते और गोलियां गरजती हुई बर दोनों, जर्मन और मित्र-शक्तियों सिपाही प्रतिदिन हजारों की में मरते, जैसे आदमी न हों, तुच्छ हों. मौत बेहद सस्ती हो गयी थी.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

त्वहीन और व्यथ लगने लगा था. परिस्थितियों ने अल्पायु के बावजूद ा मस्तिष्क जवान कर दिया था. क्त सत्य अपने सही रूप में मेरे सामने ा था. अंगीठी जल रही थी. नीरवता सहसा मुझे मम्मी की दस्तक सुनाई दी. ा का वातावरण और जंगल में घुप रा. दिन के माहौल में भी सराहटें डरा देती थीं. हर पेड़ के पीछे के घात लगाये होने का शक होता ऐसे में रात के समय यह दस्तक कैसी? और मम्मी एक क्षण के लिए डर से . दस्तक दोबारा गूंजी. मम्मी ने लैंप थ में उठाया और मुझे अपनी ओट में लिया. मुझे ऐसा लगा जैसे मम्मी जादुई ानियों की कोई राजकुमारी हैं, अतः की ओट में खड़ा हुआ व्यक्ति शत्रु दिखाई नहीं देगा. लकड़ी का दरवाजा ारी दस्तक की चोट सहन करने के य नहीं था. मम्मी ने बढ़कर पट खोल ा. मेरी एक आंख उनकी बांह की ों से झांक रही थी. दरवाजे सामने दो आदमी खड़े थे. उनके शरीर सैनिक-वर्दियां थीं और सिरों पर लोहे टोप. मैंने हठात् अपने मन से कहा, न हो, यह शत्रु-सैनिक हैं.' तत्काल मुझे के शब्द याद आये, 'विटसकन, अब इस वार के संरक्षक तुम हो. अब अपनी मां रक्षा का दायित्व तुम्हारा है.' मैं मम्मी बांह से सिर निकालकर बाहर युद्ध- में आ गया. दोनों आदमियों ने किसी नबी भाषा में मम्मी से बातें की और की ओर संकेत किया. फर्श पर बर्फ ी हुई थी, और बर्फ पर एक तीसरा क्ति लेटा हुआ था. वह नवागत सिपाहि- का जख्मी साथी था. बर्फ के कण अभी उसके बालों में चिपकने लगे थे. मैं समझा यह शायद मर चुका है. मम्मी चुपचाप ी रहीं. उनके चेहरे पर कोई भी तिक्रिया नहीं हुई. कुछ क्षणों के बाद का हाथ धीरे से मेरे कंधे पर आ टिका. ा का अंधकार और एकाकीपन. दो स्त्र पुरुष हमारे सामने थे. वे चाहते शक्ति के बल पर हमें विवश कर सकते पर वे केवल नजरों की शक्ति का योग करते रहे. उनकी आंखों में ानुभूति और दया के लिए एक याचना वे अपने जख्मी साथी को भय और चिंता से बार-बार देखने लगे. यद्यपि शत्रु थे, तथापि मुझे उन पर दया आने लगी. मम्मी एक कदम पीछे हटीं—"अंदर आ जाओ." उन्होंने फ्रांसीसी भाषा में में कहा. सिपाहियों की आंखों में कृतज्ञता और उल्लास का प्रकाश दीपक की लौ की तरह लहराया. दोनों ने झुककर अपने साथी को सावधानी से हाथों पर उठाया. जख्मी के मुंह से कराह निकली. उन्होंने छोटे-से दरबे से कॉटेज में प्रवेश किया. कॉटेज में जीवन की गर्मी, सहानुभूति की महक और जीने की उमंग थी. पहले उनके चेहरे थकन, भूख और एक अज्ञात भय से मुरझाये हुए थे. अब लपटों का प्रतिबिंब पड़ा, तो रक्तिम दिखाई देने लगे. मम्मी ने उनसे कहा, "जख्मी को बिस्तर पर लिटा दो."

सिपाहियों ने जख्मी को बिस्तर पर लिटा दिया. मम्मी एक संकोच के साथ उनके निकट खड़ी थीं. वह कुछ क्षणों तक गौर से उन्हें देखती रहीं. फिर मेरी ओर पलटीं, "विटसकन, एक बाल्टी में बाहर से बर्फ ले आओ. सिपाहियों के हाथों की उंगलियां सर्दी से नीली हो रही हैं. बर्फ का मसाज इनके लिए उपयोगी होगा."

मैं बाल्टी उठाकर बाहर आ गया. गहरे अंधेरे में बर्फ बराबर गिर रही थी. भूमंडल जैसे बर्फ हो गया था. इस अवस्था में किसी भटके हुए आदमी के पास कोई शरणस्थल न हो और यह भय सिर पर छाया रहे कि किसी भी क्षण, किसी भी ओर से कोई गोली सीना छेद सकती है, तो जरा सोचिए, ऐसा आदमी कितना निरीह होगा! मुझे उन तीनों अमरीकियों पर बड़ी दया आयी.

▣

मैं बर्फ लेकर कॉटेज में पहुंचा. सिपाही विस्मय से पलकें झपकाने लगे. शायद उनकी समझ में नहीं आया कि बर्फ किसलिए मंगवायी गयी है. मम्मी ने फ्रांसीसी में उनसे कहा, "तुम लोगों के हांथ-पांव सर्दी से ऐंठे हुए हैं. तुम्हें बर्फ के मसाज की जरूरत है."

एक सिपाही फ्रांसीसी भाषा का कुछ ज्ञान रखता था. उसने अपने साथी को मम्मी की बात समझायी. दोनों अपने हाथों पर बर्फ मलने लगे. फ्रांसीसी-ज्ञाता सिपाही ने कृतज्ञतापूर्ण मुस्कान से मम्मी की ओर देखा और अपना नाम बताया, "मेरा नाम जिम है."

दूसरा सिपाही एक दुबल-पतला नवयुवक था, जैसे भोजन न मिलने से उसकी यह हालत हो गयी हो. उसने भी दबे स्वर से कहा, "मुझे रोबिन कहते हैं". फिर जख्मी सिपाही की ओर इशारा करते हुए बोला, "इसका नाम हैरली है." मैंने हैरली को गौर से देखा. उसका पीला चेहरा जैसे सफेदी में बदल गया था.

▣

ये तीनों बेचारे कुछ दिन पूर्व अपनी पलटन से बिछुड़ गये थे. शत्रुओं से छिपते-छिपाते ये अपने साथियों की तलाश में निकले, पर भटककर इधर आ गये. देखने में वे तीनों अल्पायु के छात्रों की तरह थे. इतने दिन से दर-ब-दर भटकने के कारण उनकी दाढ़ियां बढ़ गयी थीं और उन्होंने अमरीकी सेना की भारी-भरकम वर्दी अपने शरीरों पर लाद रखी थी. फिर भी उनका तारुण्य छिप नहीं रहा था. वे भयभीत और सहमे-सहमे लगते थे. मम्मी का व्यवहार उनसे ऐसा हो गया था, जैसे बड़ों का बच्चों से होता है. उन्होंने जिम और रोबिन को जख्मी हैरली के संबंध में कुछ निर्देश दिया. फिर मेरी ओर उन्मुख हुईं, "विटसकन! घर में मेहमान आये हैं. उनकी दावत के लिए हरमन कैसा रहेगा?" मम्मी एक मुर्ग को हरमन कहती थीं. यह मुर्ग घर से हमारे साथ आया था. मम्मी चाहती थीं कि क्रिसमस पर पापा आयेंगे तो हरमन के गोश्त से उनकी सेवा की जायेगी. लेकिन पापा आये नहीं, उनके स्थान पर तीन अजनबी मेहमान आ गये. हिटलर के बायें हाथ वाले साथी का नाम हरमन था. मोटापा और मीमकाया हरमन की विशेष पहचान थी. हमारा मुर्ग भी खूब मोटा-ताजा था. इसलिए मम्मी उसे हरमन कहती थीं. मुझसे वह बोलीं, "बेटा! जाओ, हरमन को लेकर आओ. और हां, आलू भी लेते आना."

"अच्छा मम्मी." मैंने उदासी से कहा. मुझे पापा याद आ गये.

मैंने और रोबिन ने खाना पकाने में मम्मी का हाथ बंटाया. जिम एक चिंतातुर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मां की तरह हैरली के सिरहाने बैठा रहा. खाना पकाकर मम्मी ने अपने बिस्तर की चादर फाड़कर पट्टियां बनायीं और जिन के साथ मिलकर हैरली के सीने पर लपेट दी.

हैरली को युद्धक्षेत्र में गोली लगी थी और दायें फेफड़े के ऊपर फंस गयी थी. उसका खून बहता रहा. जिम और रोबिन अपनी पलटन की तलाश में उसे उठाये-उठाये फिरते रहे. मौत हर कदम पर घात में थी. गोलियां वर्षा की बूंदों की तरह उनके दायें-बायें गिर रही थीं. वह केवल संयोगवश बचते-बचाते यहां तक पहुंच गये थे.

हरमन के भुने हुए गोश्त की उत्तेजक सुगंध कॉटेज में फैल गयी. मैंने खाने की मेज लगा दी. ऐन उसी समय फिर दस्तक हुई. हम सब चौंककर अपनी-अपनी जगह निश्चल हो गये. 'अब कौन आ गया?' मेरे दिल में आशंकाओं के नाग फन उठाने लगे. फिर शांति की एक लहर ने मुझे आश्वस्त कर दिया. मैंने सोचा, यह भी अमरीकी सेना के बिछुड़े हुए सिपाही होंगे. तत्काल आगे बढ़कर मैंने दरवाजा खोल दिया. दरवाजा खुलते ही भय और आतंक की नुकीली कटार मेरे सीने में घुस गयी. मेरे शरीर को जैसे लकवा मार गया. मैंने लड़खड़ाकर चौखट का सहारा लिया और अंदर-बाहर दोनों ओर विस्मय से देखा. अंदर भुने हुए मुर्ग की सुगंध थी, हमारे बिन बुलाये अमरीकी मेहमान थे और उनके साथ उनका मरणासन्न साथी था. बाहर अमरीकी सेना के शत्रु, हमारी जर्मन सेना के चार सिपाही खड़े थे. उनकी अंगारे जैसी आंखें मुझे किसी अदृश्य दैत्य की तरह तक रही थीं. ऐसा कठिन और बोझिल क्षण मेरे जीवन में पहले कभी नहीं आया. मेरी टांगें कांप रही थीं. उनसे मेरा अपना बोझ नहीं उठाया जा रहा था. दरवाजे से धीमी-धीमी रोशनी आ रही थी. जर्मन-वर्दी के बटन बार-बार जगमगा उठते. मैं कांपकर रह जाता, क्योंकि हमारे देश में शत्रुओं को शरण देने का दंड मृत्यु था. मैं, मम्मी और रोबिन निश्चल हो गये थे. जिम और रोबिन को एक दीर्घ संघर्ष के बाद छत और खुराक प्राप्त हुई थी. अभी वह पहला ग्रास भी मुंह में न रख सके थे कि शत्रु ने उन्हें आ पकड़ा. उनकी हालत देखने लायक थी. मम्मी का रंग भी सफेद हो रहा था, पर उन्होंने स्वंय पर काबू पाया और प्रतिष्ठा से कदम उठाती हुई मेरे पास आकर सैनिकों को देखने लगीं. एक सैनिक ने आदरपूर्वक टोपी उतारी और कहा, "मैडम! क्रिसमस मुबारक हो!" वह मुस्कुराया. "वास्तव में हम अपनी रेजिमेंट से बिछुड़ गये हैं. अब सुबह के उजाले से पहले उसे हम ढूंढ़ नहीं सकते. क्रिसमस की रात है. यह रात हम किसी भी घर में बितायें, हमें अपने घर की कल्पना रहेगी." वह रुककर मम्मी को देखने लगा.

मम्मी ने ठहर-ठहरकर कहा, "यहां तुम लोगों को खाना भी मिल सकता है, सुखदायक और गर्म वातावरण भी, पर. . ." वह चुप हो गयीं. जर्मन सिपाही कृतज्ञता से मुस्कुरा दिये. मम्मी कहने लगीं, "हमारे यहां आज पहले से कुछ मेहमान आये हुए हैं. संभवतः तुम लोग उनके साथ ठहरना पसंद नहीं करोगे! " मम्मी की आवाज दृढ़ और विश्वासपूर्ण थी.

"मैडम!" एक जर्मन सिपाही ने कहा, "यह समय पसंद-नापसंद का नहीं है. हमें तो बस रात भर के लिए ठिकाना चाहिए."

"अच्छा, ठिकाना तुम्हें मिल जायेगा, पर याद रखना, आज क्रिसमस है. मेरे घर में कोई उत्पात न हो. कोई गोली-वाली न चले. समझ गये?"

"अंदर कौन है?" जर्मन विस्मित रह गये, "अमरीकी?"

मम्मी ने उनके प्रश्न का उत्तर दिये बिना कहा, "तुम लोग आयु को दृष्टि से मेरे बेटों के समान हो. उसी प्रकार वह मेहमान भी मेरे बेटे हैं, जो पहले से अंदर मौजूद हैं. वे भी तुम्हारी तरह ही रास्ता भटककर यहां आ निकले हैं. उनमें से एक बच्चे के फेफड़े में गोली लग गयी है और वह जीवन और मृत्यु के बीच लटका हुआ है. उसके दो साथी तीन दिन से किसी न किसी प्रकार उसे बचाये हुए हैं. आज क्रिसमस है और तुम सब मेरे बच्चे हो. आज तुम लोग क्रिसमस मनाने के लिए अपने घर आये हुए हो. यह लड़ाई का नहीं, प्यार का अवसर है. वैसे भी मां बच्चों को लड़ने नहीं देतीं. आ जाओ. घर के दरवाजे तुम सबके लिए खुले हैं." उन्होंने हाथ फैलाये और पीछे हटकर को रास्ता दिया. कारपोरल विस्म मम्मी का मुंह देख रहा था. निस्त का एक चिंतनीय और निश्चल क्षण गया. फिर मम्मी ने निर्णयात्मक स्व कहा, "अब इस विषय पर कोई बात होगी."

कारपोरल ने सिर झटका, जैसे बोझ उतार फेंका हो. उसके होंठों प झिझकती मुसकुराहट फैल गयी लोग अंदर आ गये.

"अपने हथियार उतारकर यहां दो." मम्मी ने अंगीठी के पास त हाथ रखते हुए कहा, "जरा जल्दी खाना बहुत देर से प्रतीक्षा कर रहा उनके तने हुए अंग-प्रत्यंग धी

राजेंद्रसिंह बेदी : दो प्रसंग

आइडिया

बी. आर. चोपड़ा एक पंजाब फिल्म बनाना चाहते थे उन्होंने राजेंद्रसिंह बेदी से कहा, "एक आइडिया है मेरे पास, अगर आप उस पर कहानी तैयार कर सकें."

"कैसा आइडिया?" बेदी ने पूछा

"एक हिंदू स्त्री है," चोपड़ा ने बताया, "जिसकी औलादें बचती नहीं हैं. हर बच्चा जन्म लेते ही मर जाता है. आखिर किसी के कहने पर वह अमृतसर में 'हरिमंदि साहब' (स्वर्ण मंदिर) गुरुद्वारे में जाकर मनौती मानती है कि अग उसका अगला बच्चा बच जाये तो वह उसे सिक्ख बनायेगी.. उसके बच्चा होता है, तो वह उ सिख बना देती है और वह ब जाता है."

बेदी ने एक क्षण चुप रहक कहा, "पर चोपड़ा साहब, वह ब कहां? बच्चा सिख बन गया, त बचा कहां?"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

इशारा

राजेंद्रसिंह बेदी कुछ लेखकों के साथ बैठे हुए थे. उनमें एक पहलवान किस्म का लेखक भी था, जो अपनी रचना सुनाने के लिए बहुत उतावला था. लेखकों के टालने पर भी वह अपनी रचना सुनाने से न रहा.

वह रचना उकताहटभरी थी, और फिर इतनी लंबी कि खत्म होने में ही नहीं आ रही थी.

हर कोई तंग आया हुआ था. किसी को छुटकारे का कोई रास्ता दिखाई नहीं दे रहा था. आखिर हर किसी ने बेदी की ओर देखा कि वही छुटकारा दिलायें तो दिलायें.

सो बेदी ने मौका पाकर लेखक से कहा, "देखिए, मैं आपका और तो कुछ नहीं बिगाड़ सकता, लेकिन आपके हाथों अपनी जान गंवाकर आपको फांसी पर जरूर चढ़वा सकता हूं !"

लेखक इतना मूर्ख नहीं था कि उनका इशारा न समझता. □

● प्रस्तुति : सुखबीर

होने लगे. उन्होंने अपने हथियार बिना किसी से तख्ते पर रख दिये. मम्मी से फ्रांसीसी में बड़े प्रवाह के साथ कह रही थीं. जिन उनकी बात अंग्रेजी रोबिन को बताता रहा. बात खत्म होते उन दोनों ने भी हथियार उतारकर मारी में रख दिये. जर्मन और मित्र-क एक-दूसरे से घृणा करते थे. दोनों क लंबा शीत-युद्ध हुआ था. इस युद्ध रे पांच वर्ष की जल-थल और हवाई इयां भी शामिल थीं. दोनों की घृणा अनुमान साधारण शत्रुता से नहीं लगाया सकता. घृणा की यह विष-बेल वर्षों परवान चढ़ी थी, पर आज जर्मन और सैनिक दोनों क्रिसमस मनाने एक के नीचे एकत्र हो गये थे. इन सातों उम्र बहुत कम थी. न जाने क्या सोचकर इतने छोटे-छोटे लड़कों को लड़ाई में झोंका गया था! शत्रुओं ने हिचकिचाकर एक-दूसरे को देखा और झेंपकर मुस्कराने लगे. हमारे पास केवल तीन कुर्सियां थीं. सैनिक निःसंकोच भावना से मम्मी का बिस्तर उठा लाये. मम्मी ने मुझे और आलू लेने के लिए नीचे स्टोर में भेजा. मैं वापस आया, तो कमरे का वातावरण एक सुखद घरेलू माहौल में बदल चुका था. जर्मन कारपोरल का नाम हैंज था. वह अपने शीशे से हैरली के जख्म का मुआयना करने लगा. उसके बाकी साथी मुश्किल से सोलह-सोलह वर्ष के होंगे. वह मेरे साथ मिलकर आलू उबालने लगे. हरमन बेचारा अपने मोटापे के बावजूद इतने व्यक्तियों के लिए अपर्याप्त था. आलू उबालते समय मैंने मम्मी की आवाज सुनी. वह कारपोरल हैंज से पूछ रही थीं, "बेटे! क्या तुम सेना में चिकित्सा-विभाग से संबद्ध हो?"

"नहीं मम." कारपोरल ने कहा, "कुछ महीने पहले तक मैं हाईडलबर्ग यूनिवर्सिटी में मेडीकल का विद्यार्थी था." वह जख्मी हैरली की ओर उन्मुख होकर बोला, "हिमपात और तीव्र सर्दी के कारण जख्म सूख रहा है, पर खून बहुत अधिक बह गया है. कमजोरी हो गयी है. आराम और खुराक से यह ठीक हो जायेगा. चिंता की कोई बात नहीं."

सबके स्वरों में मित्रतापूर्ण मिठास थी. खाना लगा दिया गया. एक जर्मन ने अपने बैग से जौ की खासी बड़ी रोटी निकाली. मम्मी ने रोटी टुकड़ों में काटकर सबको बांट दी. कारपोरल हैंज ने अपनी जेब से लाल शराब की एक बोतल निकाली. मम्मी ने बोतल धन्यवाद के साथ प्राप्त की और अलग रख दी, "यह केवल हैरली के लिए है."

सबने खाने से पूर्व उठकर क्रिसमस की परंपरागत प्रार्थना दोहरायी. मम्मी की आंखों से आंसुओं की झड़ी लग गयी. उन्हें देखकर क्या मैं, जर्मन और क्या अमरीकी सभी रो पड़े. हम किसी भी देश से क्यों न हों, मनुष्य थे और स्वभाव से एक घर के और एक मां के साथ संबद्ध थे.

बाहर का घंटा बजा. हम सब बाहर आ गये. बर्फ पर कंधे से कंधा जोड़कर खड़े होकर हमने बैथेलेम-सितारा देखा. बैथेलेम-सितारा स्वर्ग की शांति और सुख का संदेश वाहक कहलाता है. वह स्वर्ग, जो संसार के सभी मनुष्यों के लिए होगा. बर्फ की सफेद पृष्ठभूमि में हम अब न जर्मन थे न अमरीकी और न एक-दूसरे के शत्रु, बल्कि हमारे दिलों से निकटवर्ती युद्धक्षेत्र तक का विचार निकल चुका था.

लाल शराब में अंडे और चीनी मिलाकर एक घोल बनाया गया. सुबह तक हैरली को यह घोल और मुर्ग का सूप बार-बार पिलाया गया. फिर सुबह हो गयी. अंधेरा अपनी आशंकाओं और भय के साथ दम तोड़ गया. जीवन की विजय हुई. हैरली को होश आ गया. कारपोरल हैंज ने उल्लास से कहा, "अब यह असानी से अपनी पलटन तक जा सकता है!"

मम्मी ने अपना सबसे सुंदर मेजपोश निकाला. जर्मन सिपाहियों ने मेजपोश दो डंडों के साथ बांधकर एक बढ़िया स्ट्रेचर तैयार कर दिया. कारपोरल हैंज ने जिम के नक्शे पर निशान लगाते हुए कहा, "देखो जिम! सूखी नदी है, इसके किनारे-किनारे चलते रहना. दूसरे मोड़ पर तुम अपनी पलटन से जा मिलोगे. वह मुस्करा रहा था, पर उसकी आंखों में आंसू थे.

"हम मोंशाऊ क्यों न चले जायें?" जिम ने उससे हाथ मिलाते हुए उदासी से पूछा.

"नहीं मित्र! मोंशाऊ नहीं. हम उस पर अधिकार कर चुके हैं."

मम्मी ने उन्हें उनके हथियार लौटा दिये. जर्मन और अमरीकी सिपाहियों ने पहले मम्मी से हाथ मिलाया. फिर एक-दूसरे से हाथ मिलाया. मम्मी ने उनसे कहा, "काश! तुम सब अपने-अपने घर सुरक्षापूर्वक लौट जाओ और अगला क्रिसमस अपने घर मनाओ. मेरी शुभकामनाएं तुम्हारे साथ हैं." उनका गला रुंध गया. वह धीमे स्वर में अटक-अटककर बोलीं, "जाओ बच्चो, जाओ." उन्होंने एक हाथ से मुझे निकट करके दूसरे हाथ से अपना भीगा हुआ चेहरा साफ किया.

हम दोनों अपने रात भर के मेहमानों को देखने लगे. वे परस्पर विरोधी दिशाओं में जा रहे थे. □

● अनुवाद : सुरजीत

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लड़ाई स्थगित

छुट्टी का भोंपू बजे आधा घंटा हो गया था. तब से वह लगातार एक ही कहे जा रहा था कि उसे घर जाने दिया जाये, पर उसे वे लोग छोड़ नहीं रहे थे. एक भीड़-सी आसपास जमा थी. ऊंची-ऊंची आवाजों में लोग जा रहे थे, उसके कानों में कुल मिलाकर शोर ही आ रहा था. उस शोर में से कुछ शब्दों को वह पकड़ पा रहा था, वे ही उसे आतंकित कर देने के लिए थे. उसने अपने कान दोनों हाथों से दबाकर बंदकर लिये थे और दोहरा हो अपना चेहरा घुटनों में दे दिया था. ऐसे में भी जब शोर कम नहीं हुआ तो वह उठा, "नहीं, कुछ नहीं करना मुझे! मुझे तुम्हारी हमदर्दी नहीं चाहिए! मुझे हाल पर छोड़ दो! रहम करो!"

उसकी बात का असर हुआ था. आवाजों का उठाव रुक गया था. आ आ जरूर रही थीं, पर उतना शोर नहीं लग रही थीं. एक शब्द जो हर आ में सम्मिलित था, वह था 'कल.'

इसके बाद धीरे-धीरे लोगों की संख्या कम होने लगी थी. . .और फिर अकेला रह गया था. अब भी उसे आशंका थी कि लोग फिर उसके चारों त जुट सकते हैं और इसी आशंका से अपने को मुक्त करने के लिए वह तेज क से लपकने लगा. किस ओर? यह शायद वह खुद भी नहीं जानता था.

▣

आज सुबह जब वह फैक्टरी आया था तो उसने स्वप्न में भी नहीं सोचा था यह सब घट जायेगा. वह चिंतित और परेशान जरूर था.

● **चित्रांकन : अवधेश कु**

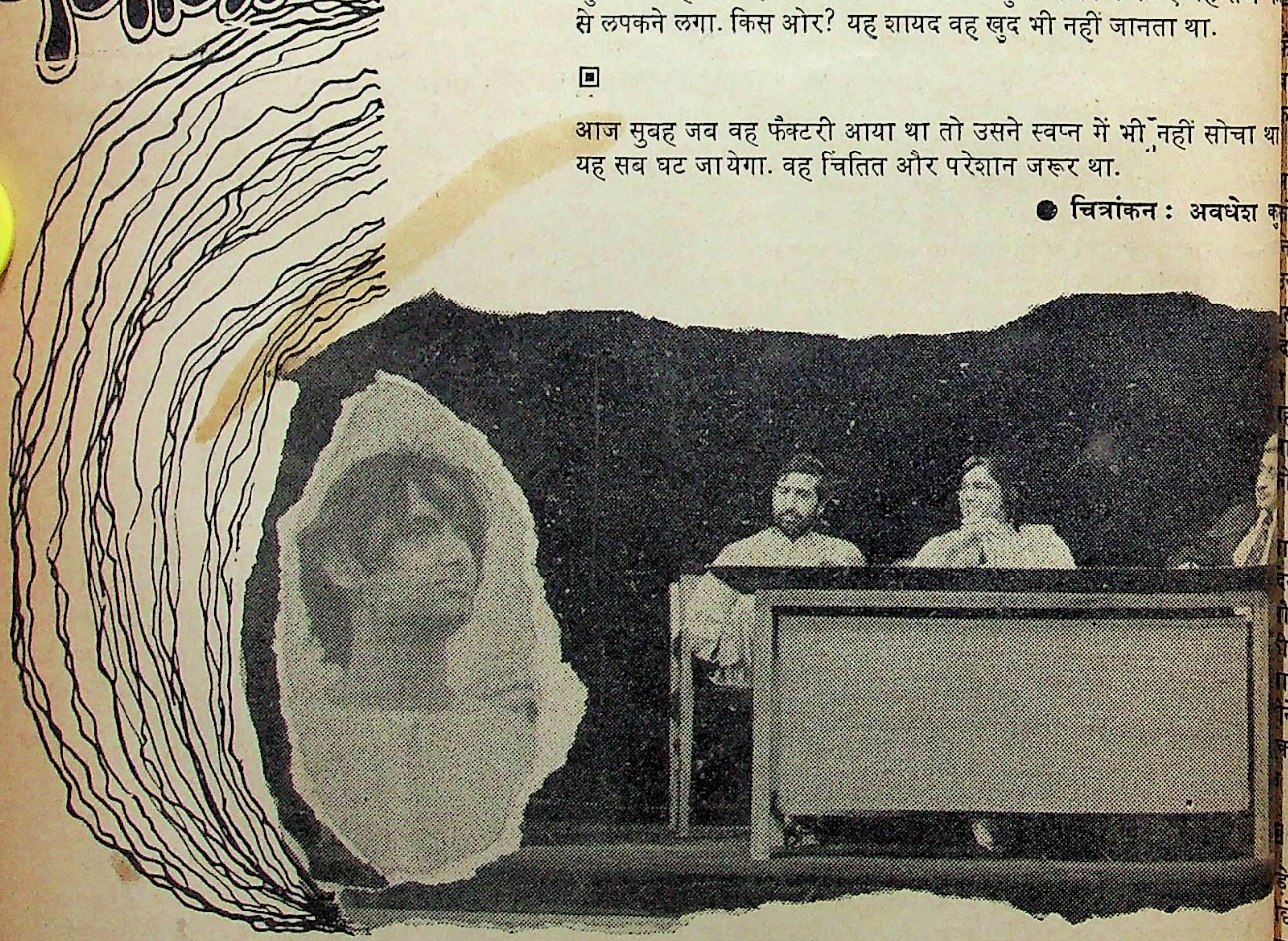

▣ सुरेश उनियाल

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मां को टी. बी. हो गयी थी. यह कोई नयी बात नहीं थी. कुछ अपवादों को छोड़कर उसके कई साथियों की माओं को टी. बी. होती थी या इसी तरह का कोई और रोग. उनका परिणाम भी वह जानता था और अपने हर साथी की तरह वह भी अपनी मां को ज्यादा से ज्यादा दिन तक जीवित देखना चाहता था. इसके लिए डाक्टर ने कुछ दवाएं लिख दी थीं और एक महीने तक लगातार उन्हें खिलाने के बाद मां को फिर एक बार दिखाने के लिए कहा था. आज सुबह पत्नी ने दवा की परची देते हुए बताया था कि शाम तक की दवा बाकी है. इसलिए लौटते हुए वह दवा लेता आये. उसने पत्नी से कहा था कि कुछ पैसे वगैरह हों तो दे दे, हालांकि वह जानता था कि पत्नी क्या जवाब देगी. और पत्नी का जवाब भी यही था. तनख्वाह तो सारी पिछले हफ्ते ही खत्म हो गयी थी, ओवरटाइम भी इस बार ज्यादा नहीं लगा था, जो लगा था, उसके पैसे मिलने में भी अभी तीन दिन बाकी थे.

■

फैक्टरी आते हुए उसने रास्ते में सोचा कि एकाउंटेंट से ही बात कर ले. अगर वह कुछ एडवांस दे दे तो कम से कम दवा लाने का काम तो हो ही सकता था.

वह यह भी जानता था कि इस फैक्टरी में हेल्पर के पद पर अस्थायी रूप से काम कर रहा है और यहां अस्थायी कर्मचारियों को एडवांस देने का कोई नियम नहीं है. फिर भी उसने सोचा कि नियमों के बीच में से भी कभी-कभी मानवता निकल आती है. उसकी जरूरत की अनिवार्यता को देखते हुए शायद एकाउंटेंट पसीज ही जाये और उसे एडवांस दे ही दे. एक और विकल्प उसके दिमाग में था कि यदि फैक्टरी से पैसे न ही मिल सके तो वह कैमिस्ट से ही मिन्नत करेगा कि उसे तीन दिन के लिए उधार दवा दे दे. वह जानता था कि जिस रोग की दवा लेने वह जाता था, उसके आधार पर कैमिस्ट उसे मोटी मुर्गी समझता होगा और ऐसे ग्राहक को वह तीन दिन के लिए उधार तो दे ही देगा.

इसी सोच-विचार के साथ उसने उस दिन का काम शुरू किया था. दिन के खाने की छुट्टी तक उसने स्वयं को पूरा विश्वास दिला लिया था कि किसी न किसी तरह दवा का प्रबंध हो जरूर जायेगा और इसी विश्वास को लिये वह खाने की छुट्टी में फैक्टरी के दफ्तर की तरफ चल पड़ा था. यहां का नियम था कि पहले दफ्तर के कर्मचारियों की खाने की छुट्टी होती थी और उनकी छुट्टी का समय पूरा होने के बाद फैक्टरी के कर्मचारियों की. वह जानता था कि अब तक एकाउंटेंट अपनी सीट पर वापस आ गया होगा और पेट भरा होने के कारण अच्छे मूड में होगा.

■

...से एक कमरे के कोने में लगी एकाउंटेंट की मेज और उसके पीछे बैठे एकाउंटेंट की चमकती चांद उसने दरवाजे से घुसते ही देख ली थी. उसकी मेज के दूसरी तरफ कुर्सी पर एक और आदमी बैठा था और वे दोनों किसी बात पर ठहाके लगा रहे थे. एकाउंटेंट की इस मुद्रा को देखकर वह एक बार फिर आश्वस्त हो गया था.

उसने एप्लीकेशन पहले ही तैयार कर ली थी. वही सीधे एकाउंटेंट की मेज पर रख दी. 'टी' हेड का टोकन नंबर देखकर और विषय के स्थान पर एडवांस शब्द देखकर एकाउंटेंट ने पूरी एप्लीकेशन पढ़ने की जरूरत नहीं समझी और वापस उसे पकड़ाते हुए कह दिया, "तुम्हें पता नहीं कि टैंपरेरी लोगों को एडवांस देने का नियम हमारी फैक्टरी में नहीं है."

"साब, पता तो है, पर मजबूरी ही ऐसी आ गयी है. मां के लिए दवा आज ही चाहिए. परसों हमें ओवरटाइम मिल जायेगा, आप उसमें से ये पैसे काट लेना. ज्यादा पैसे भी तो नहीं मांग रहा हूं, सिर्फ पच्चीस रुपये. .."

"तुम्हारी बात ठीक है, पर हमें फैक्टरी के नियमों को भी ध्यान में रखना पड़ता है. आज अगर तुम्हें दे देंगे तो कल और लोग भी आ जायेंगे एडवांस मांगने."

"साब, दो ही दिन की बात है, परसों तो. . ." उसके स्वर की गिड़गिड़ाहट क्रमशः बढ़ती जा रही थी.

"मैंने एक बार कह दिया न. . ." एकाउंटेंट के स्वर में उसी अनुपात में तल्खी भर रही थी.

उसकी गिड़गिड़ाहट बढ़ते-बढ़ते इस सीमा तक आ गयी कि उसने एकाउंटेंट के पांव पकड़ लिये. परिणामस्वरूप एकाउंटेंट की तल्खी शब्दों की सीमा पार करके एक तमाचे के रूप में उसके गाल से जा चिपकी.

यह निर्णयात्मक स्थिति थी. वह समझ गया था कि यहां अब कोई संभावना शेष नहीं है. इसलिए वह गर्दन झुकाये चुपचाप सरकता हुआ बाहर आ गया. उसने यह भी नहीं देखा कि उस कमरे में बैठी कितनी गर्दनें कहां तक उसकी पीठ का पीछा करती रही थीं.

खाने की छुट्टी का समय भी करीब-करीब पूरा हो चुका था. खाना खाने की इच्छा यों भी उसके भीतर से मर चुकी थी, इसलिए वह चुपचाप अपनी शॉप में वापस आ गया.

■

इस खबर को पूरी फैक्टरी में घूमने के लिए एक घंटा काफी था. घूमते-घूमते यह खबर फैक्टरी के नेतानुमा कर्मचारियों तक भी पहुंची थी. यूनियन के चुनाव करीब थे. हर कोई चुनाव में अपनी स्थिति मजबूत करने के लिए इस घटना का लाभ उठाने की फिराक में लग गया. अगले एक घंटे में करीब दस-पंद्रह लोग अलग-अलग उससे मिलने आये थे और सभी ने उसे आश्वासन दिया था कि उसके अपमान का बदला लेकर रहेंगे. शाम को वे एकाउंटेंट का घेराव करके उससे माफी मंगवायेंगे और अगर एकाउंटेंट ने सीधी तरह से माफी नहीं मांगी तो उसकी हड्डी-पसली एक कर देंगे.

वह उनसे एक ही बात कहता कि गलती उसी की है. जब फैक्टरी में टैंपरेरी कर्मचारियों को एडवांस देने का नियम ही नहीं है तो फिर उनका मना करना गलत तो नहीं था.

इस पर नेतानुमा लोगों को शिकायत थी कि एडवांस के लिए मना करना तो ठीक है, पर तमाचा मारना उनके अधिकार क्षेत्र में नहीं आता. इस बात का तो उसे मजा चखाना ही चाहिए, वरना कल तो वह और आगे बढ़ सकता है.

इस बात पर वह चुप रह जाता. कह भी क्या सकता था. वह कैसे कहता कि एकाउंटेंट से झगड़ा मोल लेने पर वे उसे नौकरी से निकाल देंगे. आखिर एक टैंपरेरी कर्मचारी को बाहर करते देर ही क्या लगती है; अगर वह यह बात उनसे कहता तो वे उसे कायर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कहते, धोखेबाज कहते. कहते कि वह अपनी नौकरी जाने के डर से अपने मजदूर साथियों का अहित कर रहा है. उसे आश्वासन देने की कोशिश करते कि अगर किसी ने उसकी नौकरी पर हाथ रखने की कोशिश की तो वे उन हाथों को तोड़ देंगे, पर वह जानता था कि इस सब का परिणाम क्या होता है. उसके सामने कई बार टैंपरेरी कर्मचारियों को किसी न किसी बहाने नौकरी से निकाला जाता रहा. दो-चार दिन नारेबाजी होती, पर फल वही ढाक के तीन पात. किसी को भी नौकरी पर वापस नहीं लिया गया. नौकरी से अलग होना क्या होता है, यह भी वह अच्छी तरह जानता था. वह बी. ए. पास था और बी. ए. कर लेने के बाद सामर्थ्य भर कोशिश कर लेने पर भी जब उसे अपनी योग्यता की कोई नौकरी नहीं मिल पायी थी तो उसे मजबूरन यह नौकरी कर लेनी पड़ी थी. यह भी उसे यों ही नहीं मिल गयी थी. एक हजार रुपये की पूजा चढ़ानी पड़ी थी पर्सनल ऑफिसर को. ऐसे में अगर यह नौकरी छूट गयी तो. . .! सोचते ही उसे झुरझुरी आ जाती.

उसे लगा, कहीं कोई गड़बड़ है. आखिर क्या कारण है कि वह एकाउंटेंट से भी आतंकित है और उसके खिलाफ नारे लगवाने की बात कहने वाले नेताओं से भी. वह कौन-सा स्तर है, जहां जाकर ये दोनों एक्स्ट्रीम एक हो जाते हैं और वह अकेला पड़ जाता है? इन्हीं सब सवालों को लेकर वह बाकी सारा समय सोचता रहा. कुछ-कुछ बातें उसके सामने खुलने लगी थीं.

छुट्टी का भोंपू बजते ही सब लोगों के साथ वह भी बाहर निकला. तभी उसे दो-तीन नेतानुमा लोगों ने रोक लिया. उसने साफ कह दिया कि वह किसी भी तरह से बात आगे बढ़ाने के लिए तैयार नहीं है. वे लोग तरह-तरह से उसे समझाने की कोशिश करते रहे. आसपास लोगों की संख्या बढ़ती जा रही थी. हर आदमी अपने-अपने ढंग से अपनी-अपनी बात उस पर लाद रहा था. हर आदमी अपनी आवाज को दूसरे की आवाज से ऊपर रखने की कोशिश कर रहा था ताकि आसपास के लोग भी समझ सकें कि वह कितना उत्साही है और उन लोगों का सच्चा नेता साबित हो सकता है. शुरू में उसने कुछ तर्क देने की कोशिश भी की, पर जब उसने देखा कि उन लोगों का ध्यान उसकी बात की तरफ कतई नहीं है और वे अपनी ही बात को अधिक से अधिक लोगों तक पहुंचाने के चक्कर में लगभग चीखे जा रहे हैं तो चुप ही रहना बेहतर समझा. पर इसमें भी उसे मुक्ति नहीं दिखी तो वह चिल्ला ही उठा, "नहीं, कुछ नहीं करना मुझे! मुझे तुम्हारी हमदर्दी नहीं चाहिए! मुझे मेरे हाल पर छोड़ दो! रहम करो!"

▣

जब वह उनसे मुक्त हुआ, तब तक उसका दिमाग इतना थक चुका था कि उसे पता ही नहीं चला कि वह कहां जा रहा है.

काफी देर तक चलते रहने के बाद उसने पाया कि वह रामलीला मैदान में आ पहुंचा है. सामने वह स्टेज था, जिस पर चढ़कर देश के बड़े-बड़े नेता जनता तक अपनी आवाज पहुंचाते थे. उसके स्वत: चलते कदम उसे स्टेज के ऊपर ले आये. उसने सामने मैदान पर नजर डाली. आश्चर्य! वहां लोग थे. वह भरा हुआ था, खचाखच. उसने पहचानने की कोशिश की. ये सब लोग उसकी फैक्टरी के कर्मचारी थे. वे उससे पूछ रहे थे कि वह लड़ाई से पीछे क्यों हटा?

"क्या कारण है कि एक व्यक्ति को दूसरे का अपमान करने का हक सिर्फ इसलिए है, क्योंकि वह आर्थिक रूप से सुरक्षित है और दूसरे को अपने अपमान का बदला लेने का हक सिर्फ इसलिए नहीं है, क्योंकि वह आर्थिक रूप से सुरक्षित नहीं है?"

और वह खुद भी नहीं जानता था कि कब उसने बोलना कर दिया.

"नहीं, यह गलत है, मैं कभी लड़ाई से पीछे नहीं हटा. दरअ[sic] वह लड़ाई थी ही नहीं, जिसे आप लोग लड़ाई समझ बैठे थे. यह एक षड्यंत्र था. यह षड्यंत्र मेरे खिलाफ था, हम सबके, और इस उद्देश्य था अपनी-अपनी कुर्सियां बचाना. एकाउंटेंट या पर्स ऑफिसर या इस तरह के सारे कर्मचारी अपनी कुर्सियों पर ही इसलिए हैं कि हम जैसे छोटे कर्मचारियों को नियमों की बेड़ि में जकड़ दें. हमारी हालत यह कर दें कि हमारी सारी ताकत अप ही समस्याओं से जूझने में लग जाये और उस बड़ी लड़ाई को करने की स्थिति में भी हम न रहें. यदि ये लोग हमें नियमों जरा भी मुक्त करते हैं तो इनका कुर्सी पर बैठे रहने का कारण खत्म हो जायेगा और इन्हें कुर्सी से उतारकर किसी ऐसे व्यक्ति को कुर्सी पर बिठा दिया जायेगा, जो हमें फिर से नियमों बेड़ी में जकड़ ले. . .और ये हमारे नेता! ये कुर्सियों को पाने उन पर अपनी पकड़ मजबूत करने के लिए बड़ी लड़ाई की तैया करने की बजाय सामने आयी छोटी-छोटी लड़ाइयों पर हमें अट देते हैं. इससे होता यह है कि हम लोग उसे ही असली लड़ाई सम बैठते हैं. और इस प्रकार हम कुछ व्यक्तिगत लड़ाइयों में जुट अपनी असली लड़ाई को पूरी तरह से भूल जाते हैं. . .आप कहते मैं लड़ूं, मैं भी चाहता हूं कि लड़ूं. मेरा जो अपमान हुआ है, उस गुस्सा मुझे है. मैं ऑफिस में ही उस एकाउंटेंट के एक के बदले थप्पड़ रसीद कर सकता था, पर उसके बाद क्या होता. . नौकरी से निकाल दिया जाता. . .तब इन नेताओं में से कौन मेरे लड़ता. सब यही कहते कि वह टैंपरेरी था. यूनियन का सदस्य था. उसके लिए हम कुछ नहीं कर सकते. और मेरा परिवार जि मेरे अलावा मेरी मां है, पत्नी है, दो बच्चे हैं—दर-दर की ठो खाने के लिए मजबूर हो जाता. . .क्यों? असली सवाल तो यह कि क्या कारण है कि एक व्यक्ति को दूसरे का अपमान करने हक सिर्फ इसलिए है, क्योंकि वह आर्थिक रूप से सुरक्षित है दूसरे को अपने अपमान का बदला लेने का हक सिर्फ इसलि नहीं है, क्योंकि वह आर्थिक रूप से सुरक्षित नहीं है? हम असली लड़ाई उस तंत्र के खिलाफ होनी चाहिए, जो हितों के लिए आर्थिक सुरक्षा का इस प्रकार असमान बंट करता है? उसके बारे में क्या कभी किसी ने सोचा है? उ खिलाफ लड़ने के लिए क्या कभी किसी ने कमर कसी है?. . ."

काफी देर तक बोलते रहने के बाद जब वह चुप हुआ तो जैसे सिर से सारा भार उतर गया हो. फिर वह नीचे बैठ पीठ एक खंभे से टिका ली और आंखें बंद कर लीं.

● **द्वारा 'सारिका', 10 दरियागंज, नयी दिल्ली-110002**

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

● ईसा के जन्मदिन पर बोलते हुए वध की याद में—

जबां पे मुहर लगी है तो क्या, कि रख दी है,
हर एक हल्क-ए-जंजीर में जबां मैंने।

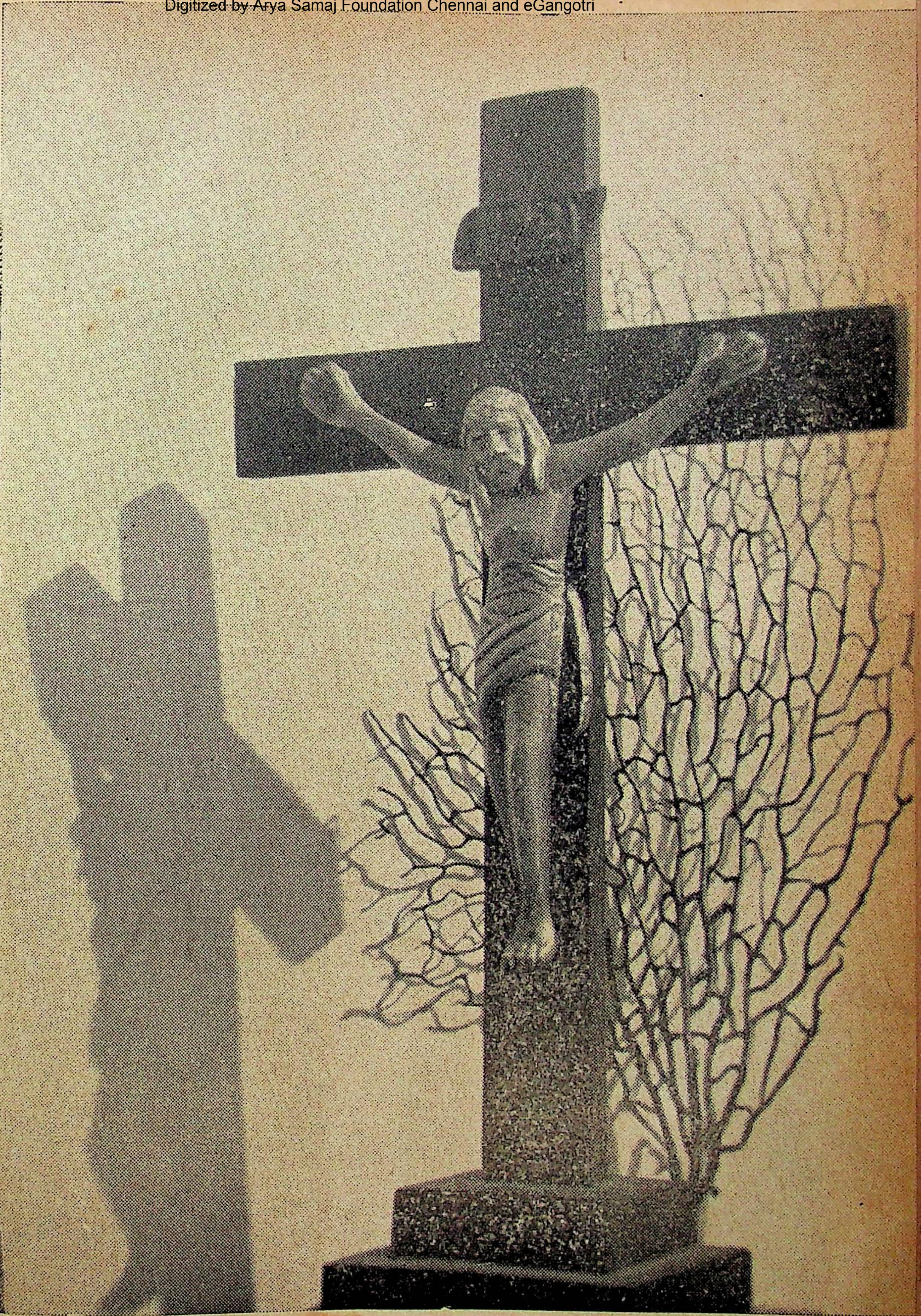

● तस्वीर बोलती है

● छायाकार : आर. के. गोयल, ७, खुड़बुड़ा देहरादून (उ.प्र.)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बढ़ते बच्चों की ज़रूरत कॉम्प्लान

सिर्फ़ कॉम्प्लान® में ही
२३ अत्यावश्यक पोषक तत्त्व हैं जिनकी उनको रोज़ाना ज़रूरत है

बढ़ते बच्चों की खास ज़रूरतें होती हैं क्योंकि साधारणतया १५ या १६ की उम्र तक उनके शरीर का पूर्ण विकास होता है.

शरीर के विकास में जो पोषक तत्त्व सीधे सहायक होते हैं, वे प्रोटीन हैं. इसीलिए आपके बच्चों को **कॉम्प्लान** की ज़रूरत इसी समय है. **कॉम्प्लान** में न केवल प्रोटीन (२०%) हैं, बल्कि इसमें बच्चों के लिए सर्वोत्तम प्रोटीन (दुग्ध प्रोटीन) भी हैं. इसमें कार्बोहाइड्रेट्स, स्निग्ध-पदार्थ, विटामिन्स और खनिज पदार्थ जैसे पोषक-तत्त्व भी हैं, जिनकी बच्चों को बढ़ती उम्र में ज़रूरत रहती है. अपने बच्चों को **कॉम्प्लान** दीजिए, हर रोज़ दिन में दो बार. ध्यान रहे, **कॉम्प्लान** ही वह नियोजित आहार है जिसकी डाक्टर ज़्यादहतर सिफ़ारिश करते हैं.

कॉम्प्लान चॉकलेट, इलायची-केसर और स्ट्रॉबेरी के स्वादभरे जायकों में—तथा प्लेन भी मिलता है. बच्चों को तो बस स्वाद भा जाए!

कॉम्प्लान®
-परिपूर्ण नियोजित आहार

मुफ़्त! ३२ पृष्ठ की पुस्तिका

"सम्पूर्ण परिवार की पोषाहार मार्गदर्शिका"
कृपया ५० पैसे के डाकटिकट सहित इस पते पर लिखें:
पोस्ट बैग नं. १६११६, (काम्प) जी-७३
बम्बई-४०० ०२५

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विमोहन

• अरुणा सीतेश

कपड़े फैलाते हुए भी ताईजी राम-नाम का जाप किये जा रही हैं—"जय सिया राम, जय जय सिया राम. . ." इसके बाद वे बाती बनाकर दिए में घी डालेंगी, अगरबत्ती पैकेट से निकालकर स्टैंड में लगायेंगी, तांबे के छोटे से कलश में पानी भरेंगी, सदाबहार, बेला, चमेली और लिली के कुछ फूल छांटकर पूजा की थाली में रखेंगी, आंगन में लगे तुलसी के पेड़ से कुछ पत्ते तोड़ेंगी और प्रसाद के लिए बताशे निकालकर पूजा करने चली जायेंगी. नहाने से पहले ही वे पूजा-घर झाड़-बुहार कर साफ कर चुकी होती हैं. फिर काफी देर तक विभिन्न स्तोत्रों के अस्फुट स्वर सुनाई देते रहेंगे. घंटी की मद्धिम ध्वनि के साथ जब वे 'जय जगदीश हरे' पर पहुंचेंगी, तब तक बाकी सब 'बेड टी' की रस्म समाप्त कर नित्य-कर्म से निवृत्त हो नहाने की तैयारी में लगे होंगे. यही इस घर की दिनचर्या की पहली कड़ी है.

सुबह जगने पर औरों की प्रतीक्षा न करनी पड़े, इसी से ताईजी सुबह चार बजे ही उठकर नहाना-धोना शुरू कर देती हैं. उनका कहना है कि नल के नीचे से उनका उठने का मन ही नहीं होता, अतः सवा-एक घंटे अवश्य ही उन्हें वहां लग जाता है. सोये हुओं की नींद में व्यवधान न पड़ने देने के लिए वे कपड़े की एक लंबी-सी कतरन नल की टोंटी में बांध देती हैं और पानी की धार बिना शोर किये बाल्टी में गिरती जाती है.

घर छोटा हो, ऐसी बात नहीं है. एक कमरा बाबा का, एक ताई का, एक छोटे ताऊ-ताई का, एक बैठक. ..घर में घुसते ही बायीं तरफ वाला कमरा विनय चाचा को मिला हुआ है, जिसमें इंतहान के दिनों में मुझे, रचना दीदी और रवि दादा को भी बैठने की आज्ञा प्राप्त है, शर्त बस यह है कि हम शोर न करें. भीतर आंगन पार वाला बड़ा-सा हालनुमा कमरा कई कामों में आता है. दिन में वह सबका, खासतौर से बच्चा पार्टी का खाने का कमरा बन जाता. मर्द लोग भी अक्सर वहीं खाना खाते हैं. रात में वहीं चारपाइयां बिछीं तो वह सोने का कमरा बन गया. और जब कभी कोई मेहमान आये तो किनारे खड़ी चारपाइयों पर चादरें डाल दी गयीं और खाने की मेज-कुर्सियां बीचमें लगाकर देखते ही देखते उसे डायनिंग हॉल बना दिया.

इस बड़े कमरे में सबसे मजेदार बात यह है कि चारों तरफ दीवारों में अल्मारियां ही अल्मारियां भरी पड़ी हैं—जिससे बटवारे में कोई कठिनाई नहीं होती. हर बड़े बच्चे (अर्थात आठवीं कक्षा से ऊपर वाले) को एक पूरी अल्मारी और छोटे को एक पूरा का पूरा

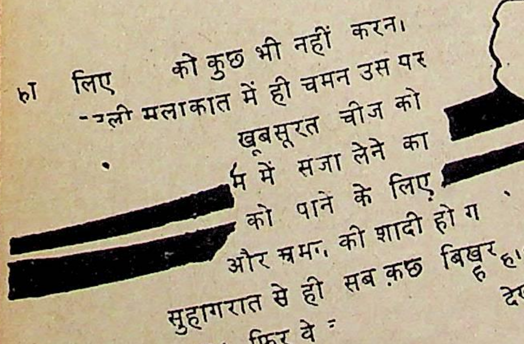

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

खाना बिना बाल खींचे और मुक्के जमाये मिल जाता है. आंसू तो फिर भी अक्सर बहते ही हैं, क्योंकि कभी किसी की खुशबूदार रबर दूसरे के तख्ते पर पहुंच जाती है तो कभी किसी का शार्पनर ही बस्ते से गायब मिलता है, कभी किसी की लाल पेंसिल खो गयी तो किसी की साबुत चाक टुकड़े-टुकड़े मिली.

झगड़ों की सुनवाई ताईजी करती हैं, उनका फैसला अंतिम फैसला होता है. कभी वे आसानी से समझा-बुझाकर सुलह करवा देती हैं, कभी हल्के से कान उमेठकर और माफी मंगवाकर. जुर्म संगीन होता है और मुजरिम हठी तो मुर्गा बनवाने की भी नौबत आ जाती है.

रचना दीदी, रंजन दादा, राकेश और राका छोटी ताई के, मैं, मीतू, राजू और संजू मिलाकर ही आठ थे. फिर इस जुलाई से तो रवि दादा और रमा भी यहीं आ गये हैं—फूफाजी का तबादला किसी गांव में हो गया है और बड़ी बुआ इनको यहीं छोड़ गयीं, सिर्फ छोटे रोहित को अपने साथ ले गयीं. तो कुल मिलाकर सत्रह लोग. साथ में सत्तू काका और इमरती चाची भी. पिछले साल तक तो छोटी बुआ भी थीं, पर वे शादी होने पर अलीगढ़ चली गयीं. छोटे फूफा का तबादला होने तक यहां उन्नीस लोग ही हैं.

कमरों से लगी एक-एक कोठरी भी है, जिसमें जाने किस-किस का सामान भरा हुआ है. इनमें हमेशा बड़े-बड़े ताले लटके रहते हैं. इनकी सफाई भी सत्तू काका से नहीं करायी जाती. सिर्फ विनय चाचा के कमरे से जुड़ी हुई कोठरी की सफाई ही काका करते हैं. बड़ी ताई ने अपनी कोठरी को पूजाघर बना डाला है और वहां हम बेरोकटोक जा सकते हैं. भगवानजी को छूना वहां भी मना है. नहाये-धोये होने पर ही, चप्पल बाहर उतारकर, हाथ अच्छी तरह धोकर वहां जाना होता है.

बड़े लोग गुसलखानों में नहाते हैं. हम लोगों को तो आंगन में नल के नीचे ही बैठा दिया जाता—गुसलखाने केवल दो ही हैं. जैसे-जैसे बच्चे बड़े होते गये, आंगन के नल पर जाने से इंकार करने लगे. हर सुबह सबका हंसी-खुशी नहा लेना अपने आप में एक बहुत बड़ी उपलब्धि समझिए.

शायद इसी वजह से ताईजी सबके जगने से पहले ही अपना काम निपटा लेना आवश्यक समझती हैं.

पहले हम उन्हें बड़ी ताईजी कहते थे और छोटी वाली को छोटी ताईजी. फिर किसी ने सुझाया कि छोटी ताईजी और ताई जी से भी काम चल सकता है. बस, तब से वे केवल ताईजी ही रह गयीं कई बार तो 'जी' भी गायब हो जाता. हर काम के लिए तो उन्हें पुकारना होता है, बार-बार, जल्दी-जल्दी में 'जी' पता नहीं कहां रह जाता है, "ताई ये कर दो, ताई ये दे दो, ताई ये बना दो. . ."

ताईजी के बिना दो मिनट भी घर का काम नहीं चल सकता. छोटी ताईजी और अम्मा घर में टिकती ही कहां हैं—कभी किसी की बहू देखने जा रही हैं, कभी किसी के घर बीमार का हाल पूछने जा रही हैं, कभी किसी से यों ही मिलने जा रही हैं, बहुत दिन से मिली नहीं हैं, कभी बाजार जा रही हैं सामान खरीदने, कभी जा रही हैं उसे बदलने, ताईजी को कम से कम मैंने तो कभी घर से बाहर निकलते नहीं देखा. हां! सुखदेव अंकल के जवान बेटे हरीश दादा जब एकाएक हैजे में चल बसे थे, तब जरूर ताईजी हर रोज बिना नागा हफ्तों उनके घर जाती रही थीं. उन दिनों तो पूजा-घर में भी मैंने कई बार उन्हें आंचल से आंखें पोंछते देखा था. मेरे पूछने पर वे झट से मुस्कराने लगतीं, "पगला कहीं का, कहां रो रही हूं भला? ले, प्रसाद ले. . ." और बताशे से मेरा मुंह बंद हो जाता.

बाबा को भी छोटी ताईजी और अम्मा की जब देखो, तब घूमने-फिरने की आदत भली नहीं लगती दीखती, तभी तो हर बात में ताईजी का ही हवाला देते हैं. . .फलां मेहमान आ रहे हैं तो बड़ी बहू से पूछो क्या बनना है, कहां सोने का इंतजाम होगा, क्या-क्या सामान बाजार से आयेगा. . .फलां चीज चाहिए? बड़ी बहू से पूछ लिया है? रचना दीदी किस कालेज में पढ़ेंगी. . .बड़ी बहू तय करेंगी. मैं आर्ट्स लूंगा या साइंस. . .? बड़ी बहू ही बतायेंगी. . . रश्मि बुआ की शादी की तैयारी क्या होगी, कैसे होगी? बड़ी बहू से पूछो. जनवासे में तौलिए नहीं पहुंचे. . .? बड़ी बहू से मांगो. हर सवाल का बाबा के पास जैसे यही रटारटाया जवाब हो. और ताईजी भी तो कमाल की हैं. दो दिन का निर्जल व्रत, तिस पर भी छोटी बुआ के ब्याह में रात-दिन फिरकी-सी घरभर में दौड़ती फिरी थीं. वे न होतीं तो कौन जाने ब्याह हो पाता या नहीं. आखिरी मेहमान के साथ पकवान-मिठाई की डलिया बंधवा दी, तब जा के उन्होंने चैन की सांस ली. "रामा-रामा जपते जाओ, कामा-काजा करते जाओ. . ." बस इसी रट के सहारे भूखी-प्यासी ताईजी बड़े से बड़ा काम निपटा देतीं.

जब भी वे इस मंत्र को रटने लगतीं, मैं समझ जाता कि उनका काम बढ़ गया है. पूर्णमासी की कथा होती—ताईजी 'रामा-रामा' जपती जातीं और पंजीरी भूनती जातीं. शहर भर के कुटुंबजनों को बुलाया जाता, जिससे पुण्य में कोई कमी न रह जाये. सबकी आवभगत का भार ताईजी के कंधों पर. उस दिन तो चौके में इमरती चाची घुसने भी न पातीं. पाक-छूत का खाना ताईजी खुद बनातीं. प्रसाद के फल वगैरह काटने-बांटने में जरूर अम्मा और छोटी ताईजी मदद कर देतीं और इतने में ही सब लोगों के जाते ही दोनों ऐसी थककर चूर हो जातीं कि घंटों उठ ही न पातीं पर ताईजी तो न जाने किस मिट्टी की बनी हैं. मेहमानों से लेकर पंडितजी तक को जिमाने का काम निपट जाता तो फिर से हवन स्थली पर पहुंच जातीं. जाने कितनी देर आंख बंद किये, हाथ जोड़े बैठी रहतीं. फिर जैसे तंद्रा टूटती और घर भर में उनकी सुमधुर आवाज गूंज उठती—"हे दीनदयाल कृपा करके भव सागर से कर पार मुझे. निर्बल के प्राण पुकार रहे जगदीश हरे, जगदीश हरे! !"

शब्द मुंह से ही नहीं, आंखों से भी बहने लगते. . .तन्मय हो ताईजी गाती जातीं, गाती जातीं. . .कभी-कभी तो उन्हें देखकर यह लगा था कि ताई नहीं, करुणा और भक्ति की कोई मूरत वहां बैठी है. . .हम मुग्ध से बैठे रहते, भारी पलकों और गीले गालों के साथ. . .पहले तो मैं अकेला ही चुपके-चुपके उनके पास जाकर बैठ जाया करता, फिर रचना दीदी और रवि दादा भी आने लगे. वैसे भी मैं घर भर में ताईजी की पूंछ के नाम से मशहूर हूं ही.

ताईजी की तरह ही उनकी कहानी भी अनोखी है. ब्याह हुआ था दस साल की उमर में. उनकी गुड़ियों को ब्याहने के लिए आयी बारात कब स्वयं उनकी बारात बन गयी, उन्हें बिल्कुल याद नहीं. गौना दो साल बाद का तय हुआ. यही उन दिनों का चलन था. कहते

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कहीं तो यह अवधि चार-पांच साल तक भी खिंच जाती. ताऊजी ने हाईस्कूल पास करके इंटर में दाखिला लिया ही था तो बुजुर्गों ने सोचा, दो साल में पढ़ाई खत्म कर लेगा, तभी बहू को भी बुला लेंगे. किसी को एतराज होने की बात थी ही नहीं! ताईजी शायद अपनी गुड़िया के गौने की तैयारी में लग गयी होंगी. जाने से पहले उसका पक्का इंतजाम जो करना था.

करीब डेढ़ साल बाद अचानक फड़फड़ाती आंधी आयी और मौसम बदरंग हो गया. कहते हैं, एक शाम ताईजी की अम्मा ने अचानक ही उनकी कलाइयों की हरी चूड़ियां तोड़ डालीं. लाख वे रोयीं, चिल्लायीं, हाथ-पैर पटके, पर किसी ने नहीं सुना.

और फिर एक दिन बड़े भाई के साथ उनको ससुराल के लिए रवाना कर दिया गया. धचके खाती बैलगाड़ी में बैठी ताईजी को भला क्या पता होगा कि वे कहां जा रही हैं, क्यों जा रही हैं, कौन-सा देश है वह, जहां जाने के लिए जबरन उन्हें बस एक सफेद कपड़े में लपेट दिया गया.

दादी ने बहू की आरती उतारने की जगह ऐसे-ऐसे स्वागत-वचन कहे कि वह नासमझ लड़की समझ ही नहीं पायी कि वह कौन हैं और उससे इस तरह क्यों बोल रही हैं. यह तो बहुत बाद में जाकर उन्हें पता चला था कि एक रात छात्रावास के कमरे में ताऊजी देर तक पढ़ने के बाद जो सोये तो फिर बस जगे ही नहीं. शायद वे पढ़ते-पढ़ते ही ऊंघने लगे थे. पता नहीं, कब किताब एक तरफ लुढ़क गयी और वे दूसरी तरफ. सुबह साथियों ने क्लास में चलने के लिए दस्तक दी तो जवाब में केवल असहज चुप्पी ही मिली. हारकर दरवाजा तुड़वाया गया. अंदर कोई नहीं था. उस रात जो कुछ भी घटा, उसका अकेला गवाह—वह लैंप, मेज पर अब भी जल रहा था. बस, ताऊजी बुझ चुके थे.

ताऊजी के साथ ही किसी रस्म के नाते ताईजी के भविष्य को भी बुझा दिया गया था. उनके अनजाने ही वैधव्य का वैताल उनके कंधों से चिपट गया था, जिसका बोझ उन्हें जिंदगीभर ढोते रहना था.

उस दिन वह जख्म ताईजी के दिल पर क्या लगा कि उनकी सारी जिंदगी ही एक जख्म बनकर रह गयी. वैधव्य के इस रिसते नासूर को ढोते-ढोते उन्हें पता ही नहीं चला कि कब किस राह से तरुणाई अपनी उमंगों के साथ आकर निकल गयी. इतने लंबे-चौड़े परिवार के एक-एक सदस्य की देखरेख करते, पूजा के कमरे में स्थापित देवी-देवताओं से अपने पिछले जन्मों के कुकर्मों के लिए रोज घंटों-घंटों क्षमा मांगते, अपने दुर्भाग्य की छाया को मात्र अपने तक सीमित रखने की चेष्टा करते-करते उन्हें इतना भी समय नहीं मिला कि कभी सदर दरवाजे से बाहर भी झांक सकें या शायद ऐसा रहा हो कि कहीं किसी फूल के सिर उठाने के डर से वे स्वयं ही अपने मन को बंजर बनाने में लगी रहती हों.

बाबा यदि कभी बहू को औरों के साथ कहीं भेजने की बात कहते भी तो दादी काट देतीं. बहू क्या करेगी? मंगल कार्यों में तो उसकी उपस्थिति पूरी तरह वर्जित थी ही. बाजार-हाट में जाकर भी बेकार समय ही गंवायेगी—दूकानों पर चकमक करती चीजें भला उसके किस काम की? सफेद धोती उसे पहननी है, सो किनारी का रंग कोई भी पसंद कर लेगा. रही किसी के घर ले जाने की बात, सो, पता नहीं किसके यहां क्या हो रहा हो, कल कुछ ऊंच-नीच हो जाये तो नाम तो दादी का ही धरा जायेगा. दादी की दलीलों और सख्त आवाज का सामना करने का साहस घर भर में किसी को नहीं. बाबा भी चुपचाप बाहर चले जाते.

जवान बेटे की मौत के लिए दादी ने पूरी तरह बहू को उत्तरदायी ठहराया था. बेटे की याद व्याकुल करती तो भगवान और भाग्य पर आया गुस्सा भी वे अपनी बहू पर उतारतीं और बहू की बिसात ही क्या थी, जो प्रतिवाद कर लेती. करती भी तो किसके बूते पर? मां मासूम बेटी के प्रति किये गये इस विश्वासघात की जवाबदेही करने सीधे दामाद के पास ही पहुंच गयीं. पिता ने इस दुहरे सदमे को किसी तरह झेल तो लिया, पर स्वयं इतना टूट गये कि समाज-भाग्य-ईश्वर किसी के भी प्रति खिलाफत करने की न तो उनमें शक्ति बची थी, न इच्छा. स्वयं अपने को ही नहीं, बेटी

लघुकथा

संकल्प

▣ उपेंद्रप्रसाद राय

उस मैदान में स्थापित बापू की आदमकद प्रतिमा के सामने उस इलाके के सारे गांधीवादियों ने एक सभा का आयोजन किया. खादी पहने औरत-मर्द, बूढ़े-जवान, गरीब-अमीर सभी तरह के लोगों की एक भारी भीड़ वहां इकट्ठी हो गयी. गांधीवादियों को संबोधित करते हुए उस वयोवृद्ध तपस्वी ने कंपित स्वर में कहा, "क्या यही गांधी के सपनों का भारत है? देश की हालत किसी से छिपी नहीं है. उदाहरण के रूप में हम अपने ही इलाके को लें. हरिजनों पर कितने अत्याचार हो रहे हैं! उनके घर लूटे जा रहे हैं! उनकी बहू-बेटियों की इज्जत से खिलवाड़ किया जा रहा है! उन्हें जिंदा जलाया जा रहा है! क्या यह सब देखकर इस प्रतिमा की आत्मा नहीं कराहती होगी? इसका हृदय विदीर्ण नहीं होता होगा? यह प्रतिमा, सब कुछ देखती है और अपनी संतानों की कृतघ्नता और क्रूरता पर आठ-आठ आंसू बहाती है. आज हम किस मुंह से अपने को गांधीवादी कहें? बताइए!"

लोगों के सिर स्वतः झुक गये. उन्होंने एक स्वर में कहा, "हम प्रतिज्ञा करते हैं कि इस प्रतिमा को अब यह सब देखने का अवसर नहीं देंगे."

सभा विसर्जित हुई. लोग घर गये. रात देर तक वह यह सोच-सोचकर उद्वेलित होता रहा कि सचमुच गांधी के नाम में आज भी कितना जादू है! लोग कितने लज्जित हुए! कितना गौरवपूर्ण संकल्प उन्होंने किया—'इस प्रतिमा को अब यह सब देखने का कोई अवसर नहीं देंगे.'

सुबह हुई. हर रोज की तरह उसने खादी का गमछा उठाया और प्रतिमा की सफाई में लग गया, किंतु बापू के चेहरे पर नजर पड़ते ही वह फफक-फफककर रो उठा. रात में किसी ने प्रतिमा की आंखें फोड़ दी थीं. ◻

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

को भी उन्होंने कुछ यही शिक्षा दी थी बार-बार— "जाही विधि राखे राम, ताही विधि रहिए."

बड़े भाई-भाभी. . .नौ बच्चों के अपने लंबे परिवार के साथ इस बहन की भी जिम्मेदारी उठायें, ऐसी अपेक्षा करना भी उनके साथ अन्याय ही होता. मंझली भाभी ठहरीं हमेशा की रोगी. वे तो अपनी ही देखभाल कर लेतीं तो बहुत था. बचे छोटे भाई-भाभी. छोटी भाभी दिल की बेहद अच्छी हैं—सभी मानते हैं. बहुत भली, बहुत दूरदर्शी. बहुत व्यवहारकुशल. इकलौती ननद का नाम आते ही उनकी आंखें भीग जातीं, पर वे जल्दबाजी में भावुकता की रौ में बहकर भी कभी ऐसा कोई निर्णय लेने के पक्ष में नहीं, जिसके लिए बाद में पछताना पड़े. उतना भर करो, जितना खुशी से कर सको —उनका जीवन मंत्र है. इसके तहत हर रक्षाबंधन और भैयादूज पर बिना नागा ताईजी के लिए आज भी एक भारी-सा मनीआर्डर आया करता है, ताईजी मुस्कराकर फार्म पर दस्तखत करती हैं और डाकिये की साइकिल निकलते ही घर भर के बच्चों में वह बंट जाती है.

ताईजी पैसे का करेंगी भी क्या? उनकी तो सब जरूरतें यों ही पूरी हो जाती हैं. बाहर आना-जाना ही इतना कम है कि कपड़े महीनों-महीनों बक्स में ही बंद रह जाते. विनय चाचा अपनी नौकरी लगने पर जो सफेद सिल्क की साड़ी लाये थे, वह तो ताईजी ने शायद अभी तक पहनी ही नहीं. इसी से तो लेने से भी इंकार कर रही थीं, "नाहक पैसा बर्बाद किया लाला. कहां पहनकर जाऊंगी इसे बताओ तो?" चाचा रुआंसे हो गये तो चुपचाप ले जाकर बक्स में रख दी.

एक बात है. ताईजी हर चीज को बहुत ही सहेजकर रखती हैं. चाचा वाली साड़ी को एक पुरानी फटी धोती में से टुकड़ा फाड़कर लपेटकर रखा. छोटे ताऊजी और बाबूजी की शादी में भी जो साड़ियां उनके लिए आयी थीं, इसी तरह के मुलायम टुकड़ों में लिपटी रखी हैं. ये रचना दीदी हैं न! ये ही खोद-खोदकर सब बातें ताईजी से पूछा करती हैं, पर पता नहीं, ताईजी उनका क्या करेंगी. पहने हुए तो मैंने उन्हें कभी देखा नहीं. विनय चाचा की शादी में जो साड़ी आयेगी, वह भी इसी तरह लपेटकर रख देंगी. हां, और क्या?

पर पहनें भी कब? दिन-रात तो काम में लगी रहती हैं. वे न उठें तो घर में सुबह ही न हो. पिछले साल दो हफ्ते के लिए तीर्थ यात्रा पर चली गयीं थीं तो जैसे घर में तूफान आ गया हो. किसी के नाश्ते में देर हो जाती, किसी के खाने में. कभी दाल में नमक नदारद तो कभी सब्जी में दुगना नमक. कभी कोई बच्चा भूखा ही स्कूल भाग रहा है तो किसी का टिफिन का डिब्बा घर में ही रह गया. घड़ी की सुइयों के हिसाब से खाना खानेवाले बाबा अलग नाराज कि इतनी देर हो गयी, उन्हें अभी तक पूछा ही नहीं गया है. मजा यह कि वही इमरती चाची, वही सत्तू काका. फिर ताईजी के सामने ही क्या जादू हो जाता है, जो सबका सब काम बिना हवड़-तबड़ के समय पर होता रहता है, पर बस होता है. यह तो उनके लौटने के दूसरे दिन ही पता चल गया था.

कभी-कभी हैरानी होती है कि इस दुबले-पतले शरीर में इतनी ताकत आती कहां से है, जो इसे सुबह पांच बजे से रात के दस-ग्यारह बजे तक एक पैर पर चला सके. न मन को बांधनेवाले रेशमी धागे हैं, न तन को पुष्ट करने वाली खुराक. दिनभर में एक समय का खाना, वह भी पूरी तरह सात्विक. यह अनुशासन व्रत दादी ने उन को इस घर में आते ही दिलवा दिया था—तन-मन को इधर-उधर भटकने से बचाने के लिए. आज दादी नहीं हैं, पर यह अनुशासन अब उनका धर्म ही नहीं, स्वभाव बन गया है. अब तो हालत यह कि हम सब समझते हैं कि चाट-खटाई-मिठाई ताईजी को पसंद नहीं, पसंद थी ही नहीं कभी. अतः घर से उनकी बेचारगी के प्रति सहानुभूति का भाव समाप्त हो चुका है और उनकी भिन्न दिनचर्या घर की सामान्यचर्या का सामान्य अंग बन चुकी है.

फिर ऐसा क्यों होता है कि जब भी वे 'निर्बल के प्राण पुकार र. . .' गाने लगती हैं, मेरा मन रोने को करता है? क्यों ऐसा लगता मुझे कि यह भजन भर नहीं, उनकी अपनी वेदना है, ईश्वर से उन अपनी टेर—इस जीवन के कष्टों से छुटकारा दिलाने के लिए पता नहीं और किसी को ऐसा क्यों नहीं लगता! अम्मा से भी पूछ चुका हूं, छोटी ताईजी से भी. "यह भजन तो घर में सभी गा हैं पगले." पर फिर मुझे ऐसा क्यों लगता है कि इसे गाते समय ता जी की आवाज गीली-गीली हो जाती है? शायद यह मेरे मन

लघुकथा

अर्थशास्त्र

▣ अशोककुमार खन्ना

मैं अपने को अर्थशास्त्र का भारी विद्वान मानता रहा हूं. इधर मेरे 'मांग, कीमत और उत्पादन' के सिद्धांतों को विश्व के अर्थशास्त्रियों ने माना है. भारत सरकार के योजना विभाग में कार्यरत मैं एक दिन केंद्रीय सचिवालय के भवन के बाहर सायकिलनुमा रेहड़ीवाले से केले खाने गया.

अपने अर्थशास्त्र के प्रथम नियम के अनुसार मैं उस रेहड़ीवाले के पास गया था, जिसके केले अच्छे थे, रश कम था तथा केलों का अंबार था.

"कहो भई, कैसे दिये!"

"अठन्नी के तीन बाबूजी!"

मैं अभी किसी सिद्धांत को सोचकर फैसला लेता कि कमेटी की गाड़ी आ गयी. आनन-फानन रेहड़ियां, पेनवाले व मोची वहां से भागे. केलेवाला इंस्पेक्टर के हत्थे चढ़ गया था. कुछ केले भागमभागी में दब गये थे. कुछ कमेटी वालों ने हथिया लिये थे. गाड़ी चली गयी. रेहड़ीवाला फिर आ डटा.

"ला भई, तीन केले देना!"

"बाबूजी, तीन के बारह आने होंगे!"

किसी भी अर्थशास्त्री का ध्यान कीमतों के बढ़ने के इस सच्चे सिद्धांत पर आज तक क्यों नहीं गया, मैं समझ नहीं सका हूं. □

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वहम ही हो. मुझे तो यह भी लगता है कि ताईजी अक्सर चौके में बैठी-बैठी रोया करती हैं, हालांकि सब कहते हैं कि उनकी आंखों में रोहे हो गये हैं.

▣

शायद सब लोग ठीक ही कहते हैं कि मैं कुछ अधिक ही सोचता हूं, जरूरत से ज्यादा या शायद आलतू-फालतू की चीज़ें अधिक पढ़ता हूं. तभी तो आजकल मैं ताईजी के क्षितिज में उगे-अनउगे इंद्र-धनुषों को तलाशा करता हूं. उम्र के खाते में रात-दिन जुड़ते उनके बेनाम दर्दों को खोजा करता हूं. सोचता हूं, कहीं ऐसा तो नहीं कि हर रात अनगिनत तारे पिघल-पिघलकर उनकी कसक में घुलते रहे हों और हम सब अपने-अपने स्वप्नों को मुट्ठी में बांधे सोते रहे हों. मुकुल ठीक ही कहता है कि अब मैं बड़ा हो गया हूं—ये सब बड़े-बड़े एहसास उसी के संकेत हैं.

पर एक बार ताईजी से पूछकर देखा जाये कि इतने पूजा-पाठ, दान-धर्म, त्याग-संयम से क्या सचमुच मन को अधिक शांति मिलती है. यदि हां, तो फिर सब ही ऐसा क्यों नहीं करते? क्या ताईजी को ही इसकी अधिक आवश्यकता है? मेरे खयाल से तो अम्मा और छोटी ताईजी को यह सब करना चाहिए. उन्हें ही हमेशा यह चिंता लगी रहती है कि इसके घर कल यह खरीदा गया, इसके घर उस दिन बहू के मायके वाले यह लाये, उसके घर वह लाये. उन्हें शांति की जरूरत ज्यादा है, पर उनसे कहे कौन? मुझे तो वे पगला कह-कर भगा देंगी.

बूझे-अनबूझे प्रश्नों को पीछे छोड़ समय आगे बढ़ता रहा. अपनी जगह टिकी रही तो बस मर्यादा की अभेद्य दीवारें, अनजाने विश्वासों के जाल, रीति-रिवाजों के लिपे-पुते चौबारे और संकरे गलियारों में समाये रहने का प्रयत्न करते हुए संस्कार.

घर में नये सिरे से मेहमानों का आना शुरू हुआ. पूरा मकान ऊपर से नीचे तक लीपा-पोता गया. फिर बंदनवार सजीं, ढोलक-मंजीरे बजे और एक शाम विनय चाचा गाजे-बाजे के साथ एक गुड़िया-सी चाची को घर ले आये.

घर भर के बच्चे कपड़े की बेजान गुड़ियों को इधर-उधर फेंक इस जीती-जागती गुड़िया के इर्द-गिर्द चक्कर काटने लगे. विनय चाचा की व्यस्तता हैरान करने लगी. अम्मा और छोटी ताईजी की मुहल्ले-दारी बढ़ती गयी. बाबा की गर्दन कुछ अधिक ही हिलने लगी. बड़े फूफा का तबादला तीन साल बाद फिर किसी शहर में हो गया. रवि दादा और रमा अपनी मम्मी के पास लौट गये. रचना दीदी की शादी के लिए भाग-दौड़ होने लगी. मैं ग्यारहवीं में पहुंच गया. बस, नहीं बदला तो ताईजी का 'रामा-रामा' का जाप, पर अब उनके चेहरे की झुर्रियों और आंख के काले गोलानों को देखकर मुझे रह-रहकर किताब में पढ़ा कबीरदास का 'यह संसार झाड़ और झांखर' अनायास ही याद आने लगा था.

उस दिन भी सब कुछ यथावत ही था. . .सूर्य ने सिंदूरी रंग बिखेरते हुए अपनी सुनहरी किरणें बिखरायी थीं. चिड़ियां रोज की तरह ही चीं-चीं करती हुई दानों की तलाश में निकली थीं. . .सायों ने रोज की तरह धीरे-धीरे सिमटने के बाद फिर लंबा होना प्रारंभ किया था. . .दिनभर भी सब सामान्य था. शाम घिरने से पहले रोज की ही तरह शीशे के सामने खड़ी हुई चाची चाचा के स्वागत के लिए कोई मुस्कान पिरो रही थीं. . .लेकिन तभी, न जाने कैसे दर्पण टूटकर बिखर गया. बरसों पहले जो आंधी इस घर का दीप बुझा गयी थी, वह न जाने कहां-कहां अंधेरा करती हुई एक बार फिर यहां आ पहुंची थी.

विनय चाचा का फैक्टरी में एक दुर्घटना में तत्काल देहांत हो गया था और थोड़ी देर बाद ही उन्हें घर लाया जा रहा था. कुछ समझने-बूझने की न शक्ति थी, न इच्छा. बाबा की लगा-तार हिलती गर्दन, कांपते हाथ-पांव, सूनी दृष्टि सबका शेष साहस भी छीने ले रही थीं. ताईजी के होंठों और आंखों पर तो श्मशान ही आकर चिपक गया था, निःशब्द.

पर दिलों पर पत्थर रखकर सब कुछ किया गया, सब कुछ सहा गया. शीशे-सा कोमल दिल भी समय आने पर कितना निर्मम हो सकता है, यह वही जानते हैं, जो जिंदगी से जूझ चुके हैं.

सब कुछ खत्म कर हम लोग घर लौटे तो अम्मा और छोटी ताई चाची को संभाल रही थीं, "बस कर बिंदु, बस कर." चाची पछाड़ खा-खाकर गिर रही थीं.

तभी ताईजी भी अपनी कोठरी से आती हुई दिखाई दीं. . . हाथ में एक पोटली-सी लिये. चाची के पास पहुंचकर ताईजी ने उन्हें बाहों में समेट लिया, "बस कर बिटिया. . .उसकी इच्छा के आगे किसी का बस नहीं चलता. . .मेरी तरफ देख बहू, और आंसू पोंछ डाल. मैं तो अकेली थी, निपट अकेली. मैंने तो अब तक अकेले काट ली. . .आगे हम दोनों मिलकर काट लेंगी. उसने दुःख दिया, वही सहने का बल भी देगा. . ."

ताईजी ने बिना बोले ही पोटली खोलकर बरसों की सहेजी अपनी सफेद साड़ियां चाची को सहेज दीं. . .और. . .'जाहि विधि राखे राम, ताही विधि रहिए. . .' गुनगुनाती हुई लौट गयीं.

▣

महीने भर बाद ही चाची के पिता फिर आये. वे बेटी के प्रति भाग्य के अन्याय को चुपचाप सह लेने के लिए तैयार नहीं थे, "जो हुआ, वह अच्छा नहीं हुआ. अब तो आप आज्ञा दीजिए...कोई अच्छा लड़का मिलते ही मैं फिर बिंदु को दुल्हन बनाकर विदा करूंगा. . ." बेटी को भाग्य के विरुद्ध फिर एक बार खड़ा करने के लिए वे कृत-संकल्प थे.

उनकी बात से बढ़कर हैरानी हुई थी सबको बाबा के उत्तर से.

"समय बदल गया है. . .इसकी जिंदगी बन जाये तो मुझे क्या ऐतराज होगा. . .ईश्वर की यही इच्छा है तो. .." उनकी शेष बात शब्दों में नहीं, आंसुओं में बह निकली.

चाची को विदा होते हम सब सहमे हुए से देखते रहे थे. उन्हें दूर जाते देखकर एक अनजाना-सा बोझ दिल पर बैठता जा रहा था. . .भारी मन से हम मुड़े तो मैंने देखा, हमारे बीच सभी थे, बस ताईजी नहीं थीं.

तेज कदमों से जाकर मैंने ताईजी के कमरे में झांका. वह अपने ठाकुरजी के सामने बैठी अपनी हिचकियों में डूबी जा रही थीं. उनकी आंखों से आंसू बह रहे थे. सूने दीपक और मौन घंटी के पास ही उनकी सफेद साड़ियां बिखरी पड़ी थीं. □

● के 4/12 मॉडल टाउन, दिल्ली-110009

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एक विश्वविद्यालय ने विज्ञापन दिया है कि—

आवश्यकता है कुछ अदद छात्रों की

□ राजेंद्र मेहता

छात्राक्रोश विश्वविद्यालय,
असंतोषनगर,

प्रवेश सूचना

विश्वविद्यालय के अगले सत्र में विभिन्न विषयों के स्नातक एवं स्नातकोत्तर पाठ्यक्रमों में प्रवेश हेतु ऐसे विद्यार्थियों से आवेदनपत्र आमंत्रित किये जाते हैं, जो विद्याअर्जन के सिवा सभी गतिविधियों में पूर्णरूपेण सक्षम हों.

अ : प्रवेश विषय : कला, विज्ञान, वाणिज्य एवं कानून संकाय में विभिन्न पाठ्यक्रमों की व्यवस्था है, जिनका पूर्ण विवरण आवेदन-पत्र के साथ भेजी जाने वाली विवरणिका में उपलब्ध है. वैसे अंतः-संकाय पाठ्यक्रमों (इंटर डिसिप्लिनरी) की व्यवस्था भी आवश्यकतानुसार की जा सकेगी. विश्वविद्यालय के कुछ पुराने छात्रों ने राजनीति 'विज्ञान' की ऐसी 'कला' का अध्ययन भी किया है, जो बाद में 'कानून' व्यवस्था को बिगाड़ने-बनाने में सहायक सिद्ध हुई है, यह उनके वर्तमान कार्यकलापों से स्पष्ट है. विश्वविद्यालय यह जानता है कि आज के युवा ही कल के राष्ट्रनिर्माता हैं. सो, इस हेतु लगभग सभी पाठ्यक्रम इस दायित्व को निबाहने के उद्देश्य से ही बनाये गये हैं.

आ: प्रवेश संख्या : प्रत्येक विषय में प्रवेश के लिए निर्धारित स्थान हैं, जिनका ब्यौरा प्रवेश विवरणिका में उपलब्ध है. (**टिप्पणी :** प्रवेश के लिए अधिक छात्र उपलब्ध होने एवं प्रवेश देने के लिए उनकी दबाव एवं आतंक की राजनीति को मद्देनजर रखते हुए उनके घिराव और तोड़फोड़ की कार्यवाही के सामने घुटने टेकते हुए प्रवेश संख्या असीमित रूप से बढ़ाये जाने की संभावना है.)

इ: (क) प्रवेश के लिए निर्धारित कुल स्थानों में से दस प्रतिशत स्थान ऐसे 'दब्बू' और 'कायर' विद्यार्थियों के लिए सुरक्षित हैं, जो हड़तालों और तोड़फोड़ को मन ही मन अनुचित तो मानते हों, मगर दादा टाइप नेताओं का विरोध करने का जिनमें साहस न हो और जो विश्वविद्यालय के वास्तविक उद्देश्यों से भटककर वाकई शिक्षा प्राप्त करना ही अपना ध्येय मानते हों.

(ख) अनुसूचित जाति/जनजाति के लिए निर्धारित बीस प्रतिशत स्थानों के अलावा पांच प्रतिशत स्थान उन छात्रों के लिए भी सुरक्षित हैं, जो अपनी तिकड़म से अनुसूचित जाति/जनजाति का फर्जी प्रमाणपत्र ला सकते हों.

(ग) दस प्रतिशत स्थान 'पहुंच' वाले छात्रों के लिए सुरक्षित हैं. ऐसे छात्रों को मंत्री, नेता, बड़े अफसरों आदि की स्लिप लानी होगी या उनसे फोन करवाना होगा.

ई : शैक्षणिक योग्यता : तीन वर्षीय स्नातक पाठ्यक्रम के प्र वर्ष में प्रवेश हेतु किसी मान्यता प्राप्त या गैरमान्यता प्राप्त सं से हायर सेकेंडरी या समकक्ष कक्षा में उत्तीर्ण होने का प्रमाण देना आवश्यक है. श्रेणी अथवा अंकों के प्रतिशत का कोई नहीं है, मगर साठ प्रतिशत से अधिक अंक पाने वाले छात्रों अपनी संस्था के प्रधान से इस आशय का प्रमाणपत्र देना हो कि जिस वर्ष उक्त परीक्षा उत्तीर्ण की गयी, उस वर्ष संस्थान 'मास कॉपींग' या 'सामूहिक नकल' का कार्यक्रम नहीं चल गया था. ऐसे प्रमाणपत्र लाने वाले को उपर्युक्त वर्णित आर को क्रम संख्या (क) का लाभ मिल सकेगा.

स्नातकोत्तर कक्षाओं में प्रवेश हेतु इस विश्वविद्यालय अन्य कहीं से स्नातक उपाधि प्राप्त किया होना आवश्यक है.

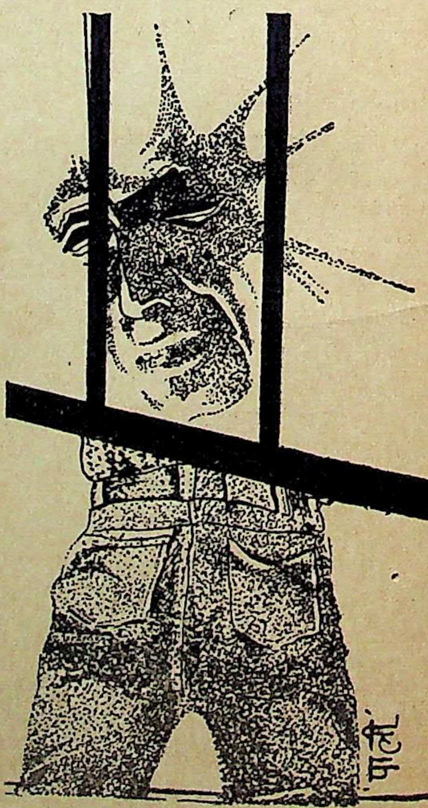

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ी-एच. डी. के लिए शोधछात्रों को स्नातकोत्तर उपाधि के अति-रिक्त चमचागीरी में दक्षता का प्रमाणपत्र भी देना होगा.

उ: अन्य योग्यताएं : उपर्युक्त शैक्षणिक योग्यताओं के अति-रिक्त शैक्षणेत्तर प्रवृत्तियों में रुचि रखने वाले छात्रों को प्रवेश में प्राथमिकता दी जायेगी. **टिप्पणी :** शैक्षणेत्तर प्रवृत्तियों से तात्पर्य, निम्न प्रकार के कार्यकलापों से है—हड़तालों, घिराव नारेबाजी में भाग लेना, शहर की बसों व सिनेमाघरों पर पथराव आगजनी करना, कक्षाओं का सामूहिक बहिष्कार करना, कक्षा में प्रॉक्सी बोलना, आध्यापकों पर कक्षा में फब्तियां कसना व उनके आने से पहले ब्लैकबोर्ड पर उनके कार्टून बनाना, लड़कियों के दुपट्टे खींचना व उनकी वेशभूषा अथवा हावभाव देखकर तत्काल कोई शेर या नये फिल्मी गीत का मुखड़ा सुनाना, बिना बात की बात पर मारपीट के लिए हमेशा तैयार रहना आदि. ऐसा विश्वविद्यालय में शिक्षा के वर्त्तमान स्तर को बनाये रखने के लिए आवश्यक है. यूनियनबाजी व स्पोर्ट्स में दक्ष छात्रों को विशेष प्राथमिकता दी जायेगी.

जो छात्र 'पिछड़ी' शिक्षण संस्थाओं में पढ़े होने के कारण इन योग्यताओं से वंचित रहे हों, उन्हें हीनभावना पालने की आवश्यकता नहीं है, क्योंकि परिसर में प्रतिवर्ष सत्र के प्रारंभ में इन विषयों पर दो सप्ताह का विशेष रिफ्रेशर कोर्स आयोजित किया जाता है, जिनमें विभिन्न विषयों के विद्वान छात्रों द्वारा अपने अनुभव के आधार पर व्याख्यान दिये जाते हैं और प्रैक्टिकल निंग भी.

ऊ: उपलब्ध सुविधाएं : विश्वविद्यालय का अपने क्षेत्र में विशिष्ट नाम है. कई भूतपूर्व छात्र विभिन्न क्षेत्रों में नक्षत्र की तरह चमक रहे हैं और अपने कारनामों से समाज, सरकारी कार्यालयों, निजी उद्योगों व विधान सभा/लोक सभा में विश्वविद्यालय का नाम रोशन कर रहे हैं.

विश्वविद्यालय में राजनीति एवं राजनीतिबाजों के लिए कोई बंधन नहीं है. छात्रों की बढ़ती रुचि को देखते हुए छात्रसंघ के चुनाव वर्ष में एक बार की बजाय दो बार कराने का प्रावधान है. छात्रसंघ के लेखा पर ऑडिट की दूषित एवं पुरानी प्रथा खत्म कर दी गयी है. विश्वविद्यालय में कुश्ती, जूडो-कराटे के प्रशिक्षण की विशेष व्यवस्था है. छात्रों के हितार्थ एक 'नकल अनुसंधान केंद्र' खोला गया है, जो इस विषय पर नवीनतम जानकारी एवं आविष्कारों से छात्रों को अवगत कराता है. परिसर में ही एक पेट्रोल पंप, गिट्टी तोड़ने का क्रशर, हथियार शॉप व टेंट-हाउस है. विश्वविद्यालय द्वार के ठीक बाहर हड़ताल के निमित्त विशाल प्रांगण है. इन सबके अतिरिक्त कक्षाएं लगाने हेतु कुछ कमरे व प्रयोगशालाएं भी हैं, जिन्हें आवश्यक उपकरणों से सुसज्जित करने के प्रयास किये जा रहे हैं.

प्रवेश के इच्छुक छात्र कृपया स्वयं का पता लिखा, टिकट लगा लिफाफा और पांच रुपये का पोस्टल आर्डर भेजें, ताकि उन्हें प्रवेश हेतु आवेदनपत्र एवं विवरणिका यथाशीघ्र भिजवायी जा सके.

हस्ताक्षर

कुल सचिव □

द्वारा एस. एल. माथुर, 21 मीरा मार्ग, पाली-306401

लघुकथा

जेबकतरा

■ एखलाक अहमद ज़ई

बस-स्टेशन पर एक बस आकर रुकी तो चढ़ने-उतरने वाले यात्री गुत्थमगुत्था होने लगे.

बस में चढ़ने वाले सभी यात्री अपनी-अपनी सीट पर बैठ गये थे. कंडक्टर भी आ गया था, केवल ड्राइवर के आने की देर थी कि तभी अचानक सभी चौंक गये. एक वृद्ध व्यक्ति बस की अगली सीट पर बैठा, जेब में हाथ डाले जोर-जोर से चिल्ला रहा था :

"हाय, मैं तो लुट गया, बरबाद हो गया. किसी मरदूद ने मेरी जेब काट ली. अब मैं कैसे जाऊंगा? हमारे लड़के का लड़का मर गया है. आज मेरा इलाहाबाद पहुंचना बहुत जरूरी है..."

बस में बैठे सभी यात्री जेबकतरे को कोसते हुए वृद्ध को सांत्वना देते रहे, पर सहायता के नाम पर सभी लोग तटस्थ थे.

किसी को रुपये-पैसों से सहायता न करते देख, वृद्ध के पीछे वाली सीट पर बैठा एक नौजवान बोल उठा :

"बाबा, आप घबराइए नहीं. टिकट मैं लिये देता हूं."

वृद्ध ने चैन की सांस ली.

वृद्ध घूमा और दुआएं देता हुआ नौजवान का परिचय पूछने लगा :

"बेटा, तुम्हारा क्या नाम है? क्या करते हो? कहां रहते हो?"

"मेरा नाम अशोककुमार श्रीवास्तव है. मैं गोरखपुर का रहने वाला हूं और इंजीनियर हूं." फिर काफी देर तक दोनों के मध्य गांव-घर से लेकर न जाने कहां-कहां की बातों का सिलसिला चलता रहा.

दो स्टेशनों के बाद नौजवान एक जगह उतर गया. वृद्ध ने बस के अंदर से दूर जाते उस नौजवान को हिकारत-भरी नजरों से देखते हुए बगल में बैठे एक व्यक्ति से कहा :

"साला, जेबकतरा! अपने को इंजीनियर बताता है! इसीने हमारी जेब काटी है, वरना हमारी मदद काहे करता? आज के जमाने में सब अपने ही मूली-पत्तों से मारू हैं, दूसरों की मदद करना तो बहुत दूर की बात है."

आस-पास बैठे यात्री भी उसी की हां-में-हां मिलाने लगे.

"हां बाबा, आप बिलकुल सही कहते हैं और किसी ने तो आपकी मदद नहीं की, वही क्यों करने लगा? जरूर इसीने आपकी जेब काटी होगी." □

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मुदैया फिर यह बढ़नी उगा. बाप रे, इस साल क्या होगा! फिर बारिस नहीं होगी? फसल फिर मारी जायेगी? अकाल फिर पड़गा?

तीसरे ही साल लगातार हफ्ताभर इसी पूरबी छितान पर बढ़नी उगता रहा था. बारिस नहीं हुई थी. प्यासी धरती जगह-जगह फट गयी थी. फसल मारी गयी थी. घास-पुआल की कौन कहे, पेड़-बाग सूख-टटा गये थे. गोरू-डांगर तड़प-तड़प रहे थे, और. . .

और भी बहुत कुछ हुआ था. सोमारी की आंखों के को भर गये. भोर-भोर वह गोरू-डांगर को ठीक करने के लिए उठी थी. पूरबी क्षितिज पर नजर जाते ही आकाश में बढ़नी दीख गया. वह कांप गयी. लगता है, अभी पूरा भोर नहीं हुआ है. शुक्कर का कहीं पता नहीं. तिनडोरिया भी पच्छिम की तरफ झुका नहीं है. अभी तक किसी मुर्गे की बांग भी सुनाई नहीं दी. न कोई बकरी ही मिमियायी है और न किसी जानवर के डकारने की आवाज ही आयी है. यह उसकी अपनी गइया ही है, जो पहर भर से पोंछ झार रही है. उसका मन कई स्त्री-सुलभ गालियों से भर जाता है. निगोड़ी चार-साल से बांझ है, निपूती कहीं की. और शौक चरचराता है कि पहले भोर में पोंछ झारे. इनके लिए नौकर-दाई बैठा है! जाने कैसी कुलच्छिनी है. जबसे खूंटे पर आयी है, तबसे विपत्त ही विपत्त है. अबकी जो अकाल पड़ा, तो किसी बरहामन-फकीर को पगहा धरा दूंगी. ले जाइए ए पंडित बाबा, इस कुलच्छिनी से गरीब को उबारिए.

पुरुवा हवा का लफार तेज है. आलस लगता है. मन करता है, एक नींद और हो जाये, लेकिन यह बढ़नी साहिल के कांटे की तरह मन में बैठ गया है, जो रह-रहकर डस रहा है. इस साल यह निगो[ड़ी] किसको बुहार ले जायेगी. ले जाये, न ले जाये, लेकिन अकाल पड़ ग[या] तब भात का क्या होगा! इस साल तो कोई नहीं मानेगा. ती[न] ही साल से टालते आयी हूं. इस साल टालने का मतलब है, जात से कट्टिस. बाप रे, लाज रख लीजिए ए कृपानिधान. कुजात हो[कर] किस गली में बसेरा रखूंगी. चार साल में भगजोगनी विवाहने ला[यक] हो जायेगी. किसका पल्ला पकड़ाऊंगी. बस, यही एक बेटी है, इ[सका] हाल संभाल लीजिए ए राम जी. भात और अकाल दो[नों] बराबर का भय पैदा कर रहे हैं.

गुजरा हुआ तीसरा साल उसके माथे में कील की तरह [ठुका] हुआ है. चाहती है, सब कुछ भूल जाये, लेकिन नहीं भूल पाती. कैसे भूल जाये. भूलने लायक बात भी तो हो. वह तो जिंदगी[भर] नहीं भूल सकती. हाय राम. ऐसा वज्र अकाल पड़ता है! तिन[का-] तिनका झुलस गया. भगवान भी इस तरह पथरा गये कि पूरा [साल] उनकी आंख से लोर तक नहीं ढलका. जाने किस बेईमान-शै[तान] के पाप के लिए भगवान ने पूरी धरती दहंज दी. यह भी कोई इं[साफ] का ढंग हुआ कि चार पापी-हैवान के कारण कोटि-कोटि आ[दमी] के सिर पर सितम ढा दिया गया! मुदा पूरा साल तितुलिया [की] की रोटी चबाते गुजरा. और ए रामजी, इसी तितुलिया के का[रण]

भात

▣ प्रेमकुमार मणि

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उसके दिल में काला समंदर हिलोर मारने लगा. बुझा दुःख एक बार फिर सुलग गया. आंखें डबडबा गयीं. भगजोगनी के बाबू, ए भगजोगनी के बाबू! अकाल खतम हो गया.

हाय रे अकाल. घास की रोटी खाते-खाते जो पेचिस हुआ, सो जान लेकर ही मुदैया गया. हाय रे जमाना. मुट्ठीभर भात के लिए कलट-कलट कर रहे थे. दवाई की तरह भी एक मुट्टी भात उनको मिल जाता तो आज संतोष रहता. जमाना भी ऐसा बेशरम होता है! जाने कितने दरवाजे खटखटाये, लेकिन अकाल ने तो सब नेम-धरम लील लिया था. किसी ने मुट्ठीभर चावल नहीं दिया. किसी को यह विश्वास थोड़े ही था कि फिर धरती पर घासपुआल उगेगा. फसल लहलहायेगी.

कैसा समाज है, कैसा नेम-धरम! जिसने मांगने पर एक मुट्ठी चावल नहीं दिया, वही उनके आंख मूंदते भात के लिए सिर पर सवार हो गया. एक आदमी कहां तक करे ए राम जी. तनी रहे तब तनी, एकबारगी तीन-तीन भात. एक भात मतलब दो मन चावल. कहां तक कलेजा बांधूं. कितनी आरजू-मिनती की कि इस रांड-बेवा पर कृपा कीजिए ए पंच-परमेश्वर लोग. एक भात पर मान जाइए, लेकिन कौन मानता है. नहीं, तीनों भात, और एक ही साल. जाने कितनी हथजोड़िया पर लोग तैयार हुए कि तीन भात तीन साल में, लेकिन लगातार आग लगे ऐसे जात-धरम में. दुःख में कोई जुट जाता, तब न जानती कि हां, जात के कलेजा में हमारे लिए भी कोई जगह है. दुःख में तो कोई न जुटा. जुटी भी तो परवतिया की मां. परजात परमिन. वह यदि हठ करती, तब बात भी समझ में आती.

पुरवा का अलसाया बयार मन के हाहाकार के आगे पछाड़ खा गया. नींद खतम हो गयी. मन में एक बार फिर भात पहाड़ की शकल में खड़ा हो गया. इस साल तो चाहे जैसे हो, निबाहना ही है. एक मन करता है कि इस कुलच्छिनी गाय को ही बेचकर भोज-भात करा दूं, लेकिन एक भाव मन को बांध लेता है. यह एक गाय ही तो है, जो उनकी याद के रूप में शेष है. इसे भी बेचकर उन्हें सदा-सदा के लिए बिसरा ही दूं. न, इतना दुःख-सितम सह लिया, तब एक दुःख यह भी, और क्या.

सोमारी गाय के नजदीक पहुंच गयी और स्नेह से उसकी देह सहलाने लगी. गाय ने भी देह फड़कायी और पूंछ झाड़कर दुलार से रंभायी. सोमारी का रोवां-रोवां जुड़ा गया. बहुत अफसोस हुआ कि कुछ देर पहले इसके लिए इतनी खराब-खराब बातें कैसे सोच गयी थी. अनमुनाही रोशनी में जब उसने एक बार कातर नजर से ताका, तब सोमारी भीतर से कट गयी. इस अनबोलते जीव ने भी मुझ अभागन के खूंटे पर कौन-कौन दुःख नहीं झेला! जिस साल भगजोगिनी के बाबू ने आंखें मूंदी, उस साल यह बेचारी भी क्या कम टटायी थी. क्या जाने इसी कारण बांझ हो गयी हो. इसी साल से तो देह पर रोवां चढ़ना शुरू हुआ था. और फिर मुदैया बढ़नी उग गया. हम लोगों के लिए नहीं तो इस अनबोलते जीव के लिए तो तरस खाइए रामजी. इस पर तो नजर रखिए. गाय और धरम के लिए जाने आप कौन-कौन भेस धरते हैं, लेकिन किस गाय, किस धरम के लिए. गरीब की गाय और गरीब के धरम के लिए कहां भेस धर रहे हैं रामजी. द्रौपदी की लाज के लिए बहत्तर गज लुगा भेजा. मुझ गरीब को भी भात के पांक से उबार लीजिए.

उन ने कहा था

यौन स्वतंत्रता का सिद्धांत पश्चिम के विघटनप्राय समाज की देन है. इस सिद्धांत को डोरा रस्सेल ने प्रचारित किया था व खुद बर्ट्रेंड रस्सेल की मान्यता थी कि विवाह स्त्री और पुरुष में साथ रहने का समझौता मात्र है. वे यौन संबंध कहीं भी बनाये रखने में स्वतंत्र हैं, लेकिन जब डोरा रस्सेल ने एक अमरीकी पत्रकार से दो संतानें उत्पन्न कीं तो उनके विवाह संबंध में इतनी कटुता आयी कि अंत तलाक पर हुआ.

■ हंसराज रहबर (संचेतना)

आप गोरे हैं, मैं काला हूं. गोरा आदमी आपकी बात सुनेगा. क्या आप उन्हें बता देंगे कि ईश्वर के लिए अब अपनी दया दिखाकर हमें अपमानित न करें. हमें अपनी लड़ाई खुद लड़ लेने दें.

■ मुद्राराक्षस
('मेरा नाम तेरा नाम' उपन्यास में डा. लोठार लुत्से को समर्पण)

श्रीमती इंदिरा गांधी की मंत्रिपरिषद के लोग घरेलू नौकरों से अधिक अहमियत नहीं रखते. वे उन्हें कोई सही सलाह देने में अक्षम हैं.

■ अरुण शौरी (सोसायटी)

जो जीवन को प्यार करते हैं, वे उसे जीते हैं और जो जीवन से डरते हैं, वे कायदे-कानून बनाते हैं.

■ प्रोतिमा बेदी (ईव्स वीकली)

समाज में आप या तो भीड़ का हिस्सा हैं, जहां कोई आप पर ध्यान नहीं देता, या फिर आप जो चाहते हैं, उस राह पर हैं और तब आप पर पत्थर ही बरसेंगे.

■ मल्लिका साराभाई को उनके पिता की सलाह

सोमारी का दिल भक्ति भाव से गलबला गया. भगवान जरूर इंसाफ करेंगे. जात-धरम की रक्षा भगवान नहीं करेंगे, तब कौन करेगा. इस कलमुंही बढ़नी के उगने से क्या होगा. भगवान की मरजी के आगे सब सून है.

भोर सरकने लगी है. मुर्गे की बांग सुनाई देने लगी है. जानवर भी कहीं-कहीं डकारने लगे हैं. कौए भी फड़फड़ा रहे हैं, कुरूर रहे हैं. शुक्कर पझाने लगा है.

सोमारी चुपचाप खड़ी नाखून से धरती कुरेद रही है. मन ही मन हिसाब जोड़ रही है कि भात का खरचा कैसे पूरा होगा. अपना कंठा और भगजोगनी की छागल बेच देने के बाद भी कुछ घट जायेगा क्या!

पूरबी कोने पर ललाम खिल रहा है. सूरज अब उगा कि तब. पूरे संसार में थिरकन है, कल्लोल है, पात-पात मुस्का रहा है. कोमल अरुणाई रेशे-रेशे पर फिसल रही है. सोमारी संसार से अलग-थलग क्लांत है. ठीक इसी समय उसके मन में एक काला सूरज उग रहा है. उसके दिल में कोई ललाम नहीं है, कोई थिरकन नहीं है. बस, केवल दो शब्दों की अनवरत गूंज है,—जात और भात, जात और भात. □

● **मधुवन, नौबतपुर, पटना-801109**

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अनजानी इतिहास कथाएं

इतिहास को किसी ने 'अनुमोदित कल्पना' कहा है और 'किसी ने 'मानव जाति के अपराध, मूर्खता एवं दुर्भाग्य की पंजिका', लेकिन हमें लगता है कि इतिहास अतीत के हादसों की कब्रगाह हैं. किसी भी कब्र को कुरेदिए, आपको चीखते, कराहते, पैशाचिक अट्टहास लगाते हादसे नजर आयेंगे—वे हादसे, जिन्हें आम पाठक नहीं जानते. अगस्त : 80, अंक : 2 से प्रारंभ इस शृंखला में इस बार प्रस्तुत हैं—मुगलिया सल्तनत के आखिरी और शायर बादशाह के वक्त में नमूदार हुए हादसों और उसकी बदनसीबी की गाथा कि कैसे वह अपने पांवों पर खुद ही कुल्हाड़ियां चलाता रहा और बेमौत मारा गया!

और अपमान ज़फर का किया गया. उसकी भाभी नवाब जमानी बेगम (जो मिर्जा सलीम की विधवा थी) ने अंग्रेजों की अदालत में दरख्वास्त दी कि उसके बागात ज़फर ने अपने कब्जे में कर रखे हैं. बागात लाल किले से बाहर थे. अंग्रेज जज ने बागात जमानी बेगम को सौंप दिये और जफर को आगाह किया कि किले से बाहर उसका कोई अधिकार नहीं है. ज़फर तड़प उठा. उसने आगरा के लेफ्टिनेंट गवर्नर के यहां अपील की, पर अपील खारिज कर दी गयी. ज़फर का दिल रो पड़ा:—

किस्सा ए गम से मेरे
खुश यूं हुआ वो बेरहम,
फिर कहानी न कोई और
उसने 'ज़फर' सुनी !

और—

कितना था बदनसीब ज़फर!

▣ बाला दु

अकबर शाह द्वितीय और राजपूतानी लाल बाई का बदनसीब बेटा—आबू ज़फर सिराजुद्दीन बहादुर गाजी. तैमूर वंश की महफिल की आखिरी शमा जो सहर होने तक कई रंगों में जलकर बुझ गयी.

वैसे मुगलों का वैभव तो उसी दिन समाप्त हो गया था जब शाह आलम के अनुरोध पर लार्ड लेक ने सन् 1803 में दिल्ली पर 'यूनियन जैक' फहरा दिया था. और जब बादशाह से ही कहा गया कि वह दिल्ली का लाल किला छोड़कर, विहार के एक प्रांत में रहने लगे तो उसका कांपता हुआ हाथ तलवार के ऊपर जा पड़ा था. लरजते स्वरों में वह इतना ही कह पाया था, "यह कभी नहीं हो सकता." पर बादशाह पेंशनयाफ्ता बनकर रह गया. साढ़े ग्यारह लाख सालाना पेंशन पाने वाली कठपुतली! उसने राजा राममोहनराय को अपना वकील बनाकर इस अन्याय के बारे में महारानी विक्टोरिया के कान में बात डाली. पर हुआ कुछ भी नहीं. जब ज़फर डगमगाती गद्दी पर बैठा तो उसने भी एक अंग्रेज वकील जार्ज टामसन को 'सफीरुद्दौला मुशीरुल मुल्क बहादुर मसलह जंग' का खिताब देकर इंग्लैंड भेजा. पर हुआ कुछ भी नहीं.

बदनसीब ज़फर के बाप-दादाओं का वैभव-प्रतीक 'तख्ते-ताऊस' तो ईरान का लुटेरा नादिरशाह पहले ही ले गया था. उसके बाद टूटे हुए मुगल बादशाह एक चांदी के तख्त पर बैठकर दीवाने खास में दरबार करते रहे. जब ज़फर आया तब अंग्रेजों ने इस चांदी के तख्त को भी उठवाकर नीचे तहखाने में बंद कर दिया. 'दीवाने आम' में ताला जड़ दिया. 'दीवाने खास' में दरबार लगाने पर पाबंदी लगा दी गयी.

ज़फर दरबार की जगह अब मुशायरे करके अपनी तबीयत बहलाता. अपने दिल के दर्द को आंसुओं से लिखकर शायरी में ढालता रहता. जब बाहर निकलता तो उसकी गाड़ी में 16 घोड़े जोते जाते. बेगम जीनत महल की गाड़ी मे आठ घोड़े जोते जाते. जब वह जाती तो आगे डंका बजता जाता. लार्ड डलहौजी ने इसका बड़ा उपहास उड़ाया और हंस-हंसकर जीनत बेगम को 'डंका बेगम' कहने लगा. अंग्रेजों को आदेश दे दिये गये कि बादशाही सवारी का कोई भी आदर न किया जाये.

जफर के साथ छेड़छाड़ करने में उन्हें आनंद मिलता. वे कहते कि वह लाल किला छोड़कर महरौली स्थित 'जहाज महल' (ज़फर महल) में चला जाये. तभी एक

अल्लाह ही हमारी तरफ है ए ज़फ
कोई अगर नहीं है हमारी तरफ न हो

बासठ वर्ष का यह टिमटिमाता दीप फिर भी किसी तरह जलता रहा. तभी बद नसीबी का एक और बादल उसके जीव पर घिर अया.

12 मई, 1857!

पहाड़गंज थाने के थानेदार मियां मु नुद्दीन हसन खां अपनी डायरी में लि हैं—"12 मई, 1857 को मेरठ से दो पैद और एक घुड़सवार रेजीमेंट दिल्ली में आ उनके साथ दिल्ली की तीन पैदल रेजी तोपखाने की एक बैटरी भी मिल गयी. कुल मिलाकर 25-30 तिलंगे थे. इन नेता एक यूरोपीयन था जो कभी मेरठ '17 फुट' नामक अंग्रेजी पलटन का सिपा था और जिसे किसी जुर्म में बरख्वा कर दिया गया था. यह यूरोपियन सिपा मुसलमान बनकर अब्दुल्ला बेग कहल लगा. यही बागी सिपाहियों का लीडर सलाहकार बन गया और इसके दबाव आकर ज़फर विद्रोह का नेता बादशाह का निजी दफ्तर अब्दुल्ला बे कब्जे में कर लिया. दीवानखाने बागियों का पहरा लगवा दिया और शाह को दरबार लगाने को मजबूर कि

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

12 मई, 1857 के दिन ही पंद्रह साल से बंद पड़ा चांदी का तख्त तहखाने से निकाला गया और दीवाने-आम का ताला तोड़कर ज़फर का दरबार करवाया गया.

जब किंकर्तव्यविमूढ़ 'ज़फर' से अबदुल्ला बेग के साथियों ने कहा, "आप बादशाह सलामत हैं. आप अपना हाथ हमारे सिर पर रखिए.". तब खिन्न मन से ज़फर बोला, "सुनो भाइयो, मुझे बादशाह कौन कह रहा है? मैं तो अपने आखिरी दिन काटता हुआ एक फकीर हूं. तुम यहां क्यों आये हो? मेरे पास न खजाना है, न फौज. मैं तुम्हारा सिर्फ इतना काम कर सकता हूं कि रेजीमेंट साहब से कहकर तुम्हारा तफसिया करा सकता हूं."

पर होनी को कौन टाल सकता है. ज़फर भी नहीं टाल सका. जब तिलंगों ने अंग्रेज किलेदार कैप्टन डगलस और अन्य अंग्रेजों को काट डाला तो भी जफर कांपता हुआ बोला था, "मैंने तुम्हें यहां नहीं बुलाया है. तुमने यह बड़ा गलत काम किया है."

पर उसकी सुनता कौन. समय की एक तूफानी लहर उठी और उसमें वह ज़फर को भी लपेटती ले गयी. अब ज़फर धड़कता दिल लिये उनका सहमा हुआ नेता बन गया.

12 मई, 1857 को दरबार के बाद सिपाहियों को मिठाई बांटी गयी और शाम को दावत हुई. दिल्ली के लाला रामसहाय और लालदिलवाली मल को आदेश दे दिये गये कि वे पांच सौ रुपये की दाल, चना इत्यादि सिपाहियों को नित्य निःशुल्क देंगे. पहाड़गंज के थानेदार मुईनुद्दीन हसन खां को दिल्ली का शहर कोतवाल बना दिया गया.

उसी दिन एक राजसी जुलूस भी चांदनी चौक होता हुआ निकाला गया. तिलंगों की दो रेजीमेंट और कुछ तोपें भी साथ निकलीं. तिलंगे चिल्ला रहे थे—"बहादुर शाह की जय".

दिल्ली के अखबारों को भी जोश आ गया. कितने ही अखबार थे—'दिल्ली उर्दू अखबार,' 'सादिकुल अखबार,' 'ज़फर अखबार,' 'सैयदुल अखबार,' 'सुबहतुल अखबार,' 'सिराजुल अखबार, 'मजहरूल अखबार,' 'बुद्धि प्रकाश,'—ज़फर को तरह-तरह के खिताब अखबार वाले देने लगे—'हुजूरे वाला', 'जिल्ले सुब्हानी,' खलीफा तुर रहमानी,' 'फारोग-ए-खादानी', 'आलीशानिये गुर्गानी' 'चिरागे दूद माने नज्दत', निशाने साहिबे किरानी' आदि आदि.

ज़फर भय और आशा की धूप-छांह से ढक गया. पर न जाने क्यों एक अनजाना संदेह उसे झिंझोड़ डालता. क्या ये बागी सिपाही अंग्रेजों को मसल सकेंगे? वह एक फीका-फीका दिवास्वप्न देखता रहता और उनमें खयाली रंग भरता रहता.

कंपनी बहादुर का तोहफा: ज़फर के शाहजादों का कत्लेआम!

पहला झटका ज़फर को 25 मई, 1857 को लगा. मुईनुद्दीन खां अपनी डायरी में लिखते हैं.—**"बादशाह के शाहजादे मिर्जा अबू बकर को कमांडर-इन-चीफ बनाकर अंग्रेजों को हिंडौन नदी पार करने से रोकने को भेजा गया. मिर्जा अबू बकर पुल के करीब के मकान की छत पर खड़े होकर तोपखानों का सवाल-जवाब देख रहे थे कि एक गोला उनके पास आ फटा. कमांडर-इन-चीफ साहब ने पहले कभी लड़ाई देखी नहीं थी. बदहवास होकर छत से नीचे उतरे और घोड़े पर बैठकर बगैर पीछे देखे भाग निकले. उन्हें भागता देख फौज में भगदड़ मच गयी. दिल्ली आकर फसील के फाटक बंद कर दिये गये! दूसरे दिन अंग्रेजों ने हिंडौन नदी पार कर ली."**

जफर की आंखों के आगे सपनों के महल तहस-नहस हो गये. मुंशी जीवन लाल ने अपनी डायरी में लिखा है.—

"हकीम अहसानुल्ला खां ने बादशाह को बागियों का नेता बनने से बहुत मना किया था, जिसमें अमीनुद्दीन खां, मिर्जा जेरुद्दीन खां, हसन अली खां जो नवाब झज्जर के चचा होते थे."

ज़फर को पहली बार हकीम अहसानुल्ला खां की याद आयी. उसने बदहवासी में भारतीय राजाओं को पुकारा. पर कोई नहीं आया. महाराजा पटियाला खुल्लमखुल्ला अंग्रेजों में जा मिला और चित्तौड़ के महाराजा हरस्वरूप सिंह ने पूरे रजवाड़े को अंग्रेजों की झोली में ला पटका. यहां तक कि दिल्ली के आसपास के नवाब और राजा तक बहाने बनाने लगे. लोहारू के अमीनुद्दीन अहमद खां और जियाउद्दीन खां कन्नी काट गये.

ओखली में सिर देकर ज़फर ने अब चोटों की परवाह छोड़ दी. पर तभी दिल्ली में सिपाहियों की बाढ़ आ गयी. न वेतन का प्रबंध न राशन की जुगाड़. भूखा सिपाही खिसिआया चीता बन जाता है. उन्होंने शहर के बनियों को लूटना शुरू कर दिया. शहर में बदअमनी फैलने लगी.

ज़फर गर्दन तक बदनसीबी में फंस गया. अपने ही नाकारा बेटों को कमांडर-इन-चीफ, कर्नल और कमांडर तो बना दिया, पर उनसे उम्मीद कुछ भी नहीं थी. जब बरेली से सूबेदार बख्त खां अपनी नेटिव रेजीमेंट के सिपाही लेकर दिल्ली

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आया तो उसने साफ-साफ कहा, "ये शाहजादे अंग्रेजी लड़ाइयों की चालें क्या जानें." लिहाजा उसे भी कमांडर-इन-चीफ बना दिया. अब शाहजादों में और उसमें वैमनस्य बढ़ने लगा.

वैसे बख्त खां :अंग्रेजी पद्धति का सुलझा हुआ तोपची था. उसने कई प्रयत्न भी किये पर विफल रहा. निराश होकर जकाउल्लाह खां उसे 'कम्बख्त खां' कहने लगा था.

सिपाहियों की अपार भीड़. . निरंकुश सिपाही. . बद इंतजामी. . . लूट-खसोट और आपा-धापी!

कई बार कहने पर भी जब दीवाने खास और दीवाने आम में डटे सिपाही नहीं हटे तो ज़फर ने रुआंसा होकर कहा था, "मैं कफन पहनकर जिंदगी के अय्याम किसी बाग में गुजार दूंगा." वह बार-बार कहता, "अंग्रेजों को पहाड़ी से हटाओ." बार-बार ही हमले होते पर अंग्रेजों को वे नहीं हटा सके.

अब तक 6,000 सिपाही इकट्ठे हो गये थे. जब बख्त खां ने बादशाह से शिकायत की कि सिपाही उसका हुक्म मानने में भी आनाकानी कर रहे हैं तो घबराकर ज़फर बोला, "उनसे कहो कि वे शहर छोड़कर चले जायें. वे अंग्रेजों को खत्म करने आये हैं या हिंदुस्तानियों को. मुझे यकीन हो चला है कि आखिरकार अंग्रेज इस शहर पर काबू कर लेंगे और मुझे मार डालेंगे."

ज़फर की बदनसीबी तो उस दिन रंग लायी जबकि वेतन न मिलने पर सिपाही उसके महल में घुसकर उसे ही बुरा-भला कहने लगे.

मुंशी जीवन लाल अपनी डायरी में लिखते हैं—**बादशाह से वे बदतमीजी से पेश आने लगे. कोई उन्हें 'अरे ओ बादशाह' कहता तो कोई 'सुन बुड्ढे', कोई बादशाह का हाथ पकड़कर 'मेरी बात सुन' तो कोई उसकी दाढ़ी को छूकर कहता 'मेरी सुन'. बादशाह उनके बर्ताव से गुस्सा होता पर अफसोस वह कुछ कर नहीं सकता था."**

बदनसीब ज़फर को यह दिन भी देखना था. . जबकि 3 सितंबर को सिपाहियों ने यह धमकी दी कि अगर उनको पंद्रह दिन के अंदर वेतन नहीं मिला तो वे बेगम जीनत महल को कैद करके उनकी जगह ताजमहल बेगम को गद्दी पर बैठा देंगे.

ज़फर के धैर्य का बांध टूटने लगा था. एक दिन उसने अपने दरबार में अपनी 'कसौली' (जिस पर वह बैठता था) फेंक दी और कहा, "मैं किले का सब सामान बेच दूंगा. हाथी, घोड़े, झूलें. . .यहां तक कि बेगमों के जेवर भी बेच डालूंगा." यह कह कर उसने मक्का-शरीफ की तरफ देखा और फूट-फूटकर रो पड़ा. सिपाहियों का दिल पसीज गया और वे शर्म से गर्दन झुकाकर चले गये.

रिश्वत लेकर भी कत्ल!

बादशाह ज़फर और बेगम जीनत महल दोनों ही टूट गये थे. जेम्स लैसर अपनी पुस्तक "फौलो द ड्रम' में लिखता है—**"जीनत महल ने हकीम अहसानुल्लाह खां द्वारा कैप्टन हडसन को सात हजार रुपयों की रिश्वत दी थी जिससे कि बादशाह और उसके दोनों के जीवन की रक्षा का वचन मिल सके.**

इस बारे में नागपुर विश्वविद्यालय के डाक्टर आर. सी. मजूमदार और प्रोफेसर मेंहदी हसन के बीच नवंबर 28, 1956 के 'अमृत बाजार पत्रिका' में काफी शास्त्रार्थ भी हो चुका है.

जेम्स लैसर ने लिखा है—**"हडसन हमेश कर्ज में डूबा रहा. तीनों शहजादों की मौजूदगी में उसे सात हजार रुपये और कुछ रत्न दिये गये थे. फिर इस डर से कि कहीं तीनों शहजादे इस भेद को दिल्ली गेट के पास इकट्ठी होती हुई हिंदुस्तानियों की भीड़ के सामने न कह डालें, हडसन ने उन्हें वहीं मार डाला.**

बदनसीब ज़फर के जीवन का अंतिम स्वप्न भी धुआं-धुआं हो गया. जब एक थाल में तीनों शहजादों के कटे सिर उसे 'कंपनी बहादुर का तोहफा' कहकर पेश किये गये तो अनायास ही उसके मुंह से निकल पड़ा, "अलहम्दोलिल्लाह, तैमूर की औलाद इसी तरह सुर्ख होकर बाप के सामने आया करती थी!"

जीनत महल की सिसकियों में सैकड़ों शाप घुले थे. बेगम का शाप निरर्थक नहीं गया. कैप्टन हडसन ने जिस हाथ से शहजादों को मारा था उसी में तलवार के दो घाव लगे थे जो नासूर बन गये. थोड़े ही दिन बाद हडसन लखनऊ के सिकंदर बाग के युद्ध में कुत्ते की तरह तड़प-तड़प कर मरा.

दो आने का भोजन रोज!

कल का बादशाह आज अपने ही घर में कैदी बन गया था. उसी के महल के एक गंदे कमरे में वह खरैरी खाट पर पड़ा रहता. आंखों में दुखों का अथाह सागर समेटे हुए वह माला फेरता हुआ अल्लाह से अपनी बदनसीबी का शिकवा करता रहता. एक चिलमन उसकी बदनसीबी की खामोश गवाह थी. उसी को उठाकर अंग्रेज आते और उसकी बेबसी का तमाशा देखते.

जब भी अंग्रेज तमाशाई उस 'बदनसीब तमाशे' को घूरते तो ज़फर के शरीर में उनकी निगाहें सूइयों की तरह चुभतीं.

क्रिस्टोफर हिबर्ट ने अपनी पुस्तक 'दि ग्रेट म्यूटिनी' में लिखा है—**"जब विलियम हार्वंड रसल ने 'उस सपनों में खोये कमजोर बुड्ढे' को मैला मलमल का कुर्ता और सिर पर कैंब्रिक की दुपलिया टोपी पहने देखा तो उसे दया आ गयी."** श्रीमती हडसन लिखती हैं—**—"उसे देखकर मैं घृणामिश्रित दया से कांप उठी! जो कभी इस शाही नगर का मालिक था और जिसके धन और वैभव से कोई होड़ नहीं कर सकता था, वह इस कमरे में पड़ा था जहां कि कभी उसका नीच से नीच गुलाम भी नहीं रहा होगा."**

'सीज ऑफ देहली' में एलेक्जेंडर लवैलियन लिखता है—"बहादुर शाह के रोजाना खाने के लिए दो आने खर्च किये जाते थे. वह इस खाने को उगल देता, क्योंकि खाना बहुत घटिया होता था और उसकी पाचन-शक्ति क्षीण हो चुकी थी."

बदनसीबी के भागीदार?

गवर्नर जनरल के आदेशानुसार ज़फर का मुकदमा फौजी कोर्ट मार्शल द्वारा किया गया था. कोर्ट का प्रेसीडेंट 'हार्स अर्टिलरी (घोड़ों द्वारा खींचे जाने वाले तोपखाने) का कर्नल डौज था जो कि ब्रिगेडियर शावर्स के स्थान पर नियुक्त किया गया था. कोर्ट में चार मेंबर और थे जो 60 वीं राइफल्स, 61 वीं फुट, 6 कैराबिनियर्स और 4 सिख इन्फैंट्री के अफसर थे. ज़फर का प्रोसीक्यूटर डिप्टी एडवोकेट जनरल मेजर हैरियट था. अंग्रेजी से हिंदुस्तानी तर्जुमा करने को दरियागंज

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

का रहने वाला यूरेशियन (अंग्रेज पिता और भारतीय माता की संतान) जेम्स मर्फी था. बादशाह का वकील गुलाम अब्बास था जो दरबार का पुराना कातिब था. एक पालकी में लुंज-पुंज ज़फर को लाया जाता और उसे गावतकियों पर डाल दिया जाता. उसकी कमजोर हालत देखकर मुकदमा ग्यारह बजे से चार बजे तक होता. ज़फर बुत की तरह देखा करता. न किसी बात पर ऐतराज करता न कुछ सफाई पेश करता. 29 मार्च को मुकदमे का फ़ैसला सुना दिया गया. ज़फर को 'देश निकाले' का हुक्म दिया गया.

7 अक्टूबर, 1858 की सुबह ज़फर के साथ 28 लोगों का काफिला चल पड़ा. लेफ्टिनेंट ओमेनी को चार्ज दिया गया था. 9वीं लांसर्स पलटन की निगरानी में यह दल 13 नवंबर को इलाहाबाद पहुंचे. यहां पर 28 में से 14 ने ज़फर के साथ जाने से मुंह मोड़ लिया. अब ज़फर के साथ केवल 14 साथी रह गये—मिर्जा जवां बख्त, जीनत महल, मिर्जा शाह अब्बास, शाही जमानी बेगम, (जवां बख्त की बेगम) मुबारिकउन्निसा, सुल्तानी, इशरत —खादिमों और बांदियों में अबदुर्रहमान, अहमद बेग, इंजूर, संदल, नियाजो, हुसैनी, हुरमत और लुफ़्तन.

वे मिर्जापुर से 'टेम्स' नामक स्टीमर द्वारा जलमार्ग से चल दिये और 9 दिसंबर, 1858 को सब रंगून पहुंच गये.

कूचा-ए-यार की जमीन!

रंगून के प्रांतीय कारागार का अधिकारी कैप्टन एच. एन. डेवीज लिखता है—**मेन गार्ड से थोड़ी दूर पर लकड़ी के घरों में ठहराया गया है... इन सोलह लोगों के खाने पर ग्यारह रुपये रोज खर्च किया जाता है, पर हरेक इतवार को एक रुपया अधिक दिया ज़ाता है. हर पहली तारीख को दो रुपये साबुन तेल के लिए दिये जाते हैं. स्याही, कलम और कागज देने पर सख्त मुमानियत है. बेगम जीनत महल और अन्य लोग अक्सर हकीम अहसानुल्ला को बहुत कोसते हैं कि खजाने को इधर-उधर करने में उसका बहुत हाथ रहा...छोटी उम्र की बेगम जमानी, जो जवां बख्त की बीवी है. पंद्रह साल की उम्र से ज्यादा नहीं होगी. वह दो बच्चों की मां है और शायद**

अरे ओ बादशाह! : बहादुरशाह ज़फर का आत्मसमर्पण

तीसरा आने वाला है... शहजादा बार-बार कहता है कि कितना अच्छा हो अगर दिल्ली के कमिश्नर उन सबको इंग्लैंड भिजवा दें."

इसके बाद कैप्टन डैवीज 1 जुलाई, 1861 को लिखता है— "अक्सर बेगम जीनत महल और जमानी बेगम मेरी पत्नी के पास आकर बड़ी देर तक बातें करती रहती हैं. . . जवां बख्त और शाह अब्बास अक्सर ब्रिगेड सारजेंट मेजर फिनकेन से अंग्रेजी सीखते हैं.

7 नवंबर, 1862 को सुबह पांच बजे ज़फर सब बंधनों को तोड़कर चला गया. मेन गार्ड के पीछे ही कैप्टन डेवीज ने ईंटों की कब्र बनवा दी थी, इसी कब्र पर ही गोरों की गारद बदला करती थी. उनके बूटों की धमक और ठोकरों से उसकी कब्र का निशान तक मिट गया. बहुत पहले ज़फर ही ने कहा था—

पसे मर्ग कब्र पे ऐ ज़फर कोई
फ़ातहा भी कहां पढ़े,
वो जो टूटी कब्र का था निशां
उसे ठोकरों से उड़ा दिया!

रंगून के खान बहादुर मुहम्मद नेकबारा और उनके साथियों ने थियेटर रोड पर 'बहादुर शाह दरगाह ट्रस्ट' बनाया और वे बहादुरशाह के मकबरे का मॉडल लेकर आये थे, पर अंग्रेजों ने उनका मशविरा नहीं माना.

न जाने कहां से 1934 में उसी जगह किसी ने एक छोटी-सी कब्र बना दी, जो आज भी 'दरगाह बहादुरशाह' के नाम से पुकारी जाती है.

महरौली में शाहआलम के मजार के बगल में ज़फर ने अपने लिये 'दो गज़ जमीं' रख छोड़ी थी. आज भी वह 'दो गज़ जमीं' 'कूचा-ए-चार' में सूनी पड़ी हुई है! ☐

—प्रेमकथा विशेषांक में—

ये न थी हमारी किस्मत!

राजस्थान के जाट इतिहास का वह मार्मिक किस्सा जब लड़का खुद लड़की द्वारा बनायी गयी योजना के अनुसार उसका अपहरण करने गया! ...प्रेम और जमाने की गमज़दा समझ में डूबी एक मार्मिक और दारुण गाथा.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दोनों

▣ परमानंद श्रीवास्तव

"वह बड़ी की तरह प्रेम-वेम का चक्कर नहीं चलाना चाहती थी . . . वह सीधे करना चाहती थी. वह अपने तरीके से तहस-नहस करना चाहती थी. सुखी जीवन को लेकर उसमें कोई वहम नहीं था." कमाऊ भाइयों की उपेक्षा के शिकार पिता और दो बहनों का अंत:-संघर्ष.

बड़ी ने चाय का प्याला छोटी के सामने रख दिया. छोटी को लगा, उससे कुछ गलती हो गयी है. . . उससे यह न हुआ कि खुद किचेन तक जाती और अपने लिए चाय का प्याला बनाकर ले आती. . .जबकि और कोई तो इस वक्त चाय पीता नहीं. गलती पहली बार नहीं हुई थी और पछतावा भी पहली बार नहीं हो रहा था. माना कि इम्तहान के दिन हैं और कल भी पेपर है ही, पर यह भी तो कुछ ठीक नहीं कि सारा बोझ अकेले बड़ी पर ही पड़े. उसने बड़ी की ओर सहानुभूति से देखा जो खिड़की की ओर रुख किये चुप खड़ी थी.

आंखों के नीचे की लकीरें कुछ और गहरी हो गयी थीं आंखें उसी अनुपात में छोटी लगने लगी थीं—माथा पहले की अपेक्षा ढीला और शायद चौड़ा दिखाई देने लगा था—रंग पहले ही दबा हुआ था, अब उस पर एक गहरी उदासी की पर्त जमा हो गयी मां के न होने के बाद यह सब तेजी से घटित हुआ. बड़ी की ड्योढ़ी लगने लगी और उसके पूरे चेहरे पर एक मां सरी चेहरा उभर आया.

घर की हालत यों ही सी थी. पिता रिटायर हो चुके और कमरे में पड़े रहते थे. जब तक मां थीं वे अपने दफ्तर दुनिया में ही डूबे हुए थे—दफ्तर से दफ्तर. . .यही उनकी जि थी—दफ्तर के चलते वे जगह-बेजगह भटकते भी रहे पर यह लिए शगल ही था—उनमें हमेशा एक चतुराईभरी चुस्ती हुई थी.

वे बहुतों के भाग्यविधाता थे इसीलिए अपने भाग्य को से पढ़ने का अवसर ही न था. फिर वे तेजी के साथ बुढ़ापे की

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बड़े और आज जिस कोठरीनुमा कमरे में लगभग पस्त पड़े थे, उसकी ओर देखना मुश्किल हो रहा था.

कुछ चेहरे ऐसे होते हैं (या हो जाते हैं) जिन्हें आप देख नहीं पाते. जिन्हें सह पाना मुश्किल होता है. एक वीरान बूढ़ा चेहरा, एक भयानक रूप से अशक्त, असहाय लगने वाला चेहरा, एक हास्यास्पद रूप से भावहीन चेहरा. घर के दोनों लड़के बरसों से बाहर अलग-अलग शहरों में नौकरी पर थे—दोनों बैंक में लगे हुए—ठाठ का रहना—चुस्त फैशनपरस्त बीवीयां—जमाने की हवा—मकान—फ्रिज—स्कूटर—टी. वी. यानी सब कुछ. उनमें एक, बड़ा दो बच्चों का पिता था—बच्चे कान्वेंट में पढ़ रहे थे—साफ-सुथरे, चमक से भरे, गर्दगुबार से परे. हफ्ते में, कोई खास अड़चन न हो तो एक फिल्म जरूर देख ली जाती. दूसरे महीने एक नया एल. पी. भी आ जाता था. (हालांकि दाम बढ़ने लगे थे चीजों के इन दिनों) बड़े का खास शौक था तेज संगीत. तेजी जिंदगी में जो थी—फटाफट प्रमोशन मिल गये थे.

छोटा कुछ ज्यादा ही सलीके से रहता. उसके रहने के ढंग में एक महीन किस्म की व्यावहारिकता थी जो सीमित गृहस्थी के गणित को हमेशा ठीक रखती. जिंदगी की चमक को भी. अभी संतान न थी और इस बारे में पति-पत्नी दोनों अतिरिक्त सचेत थे. कभी धोखा भी हो गया तो उन्होंने उसका इंतजाम करा लिया. फिर क्या! सब कुछ ठीक दुरुस्त. संतान न होने तक जो चमक बनी रहती है उस पर पत्नी का भरोसा कुछ ज्यादा ही था. यात्रा-पिकनिक पर वे जाते ही रहते. पर अपने को पूरी तरह सहेजकर, बचाकर. कभी-कभी उन्हें साथ चलते देखकर कॉलेज के लड़की-लड़के जैसा एहसास जगता.

बड़े और छोटे —दोनों का अब घर से इतना ही संबंध बचा रह गया था कि कभी दूसरे-तीसरे महीने बड़ी या छोटी का खत आया तो पिता का हालचाल मिल गया. इस हालचाल में उनकी कोई दिलचस्पी नहीं रह गयी थी. दोनों को ताज्जुब था कि पिता बेवजह घिसट क्यों रहे हैं. ..आदमी को तो इस हालत में जल्द से जल्द दुनिया से विदा हो जाना चाहिए—जैसे यह आदमी के लिए इतना आसान हो.

बहनों के बारे में तो वे जैसे भूल ही गये थे कि उन्हें इस घर से जाना भी हो सकता है और इस जाने में उनकी कोई भूमिका भी हो सकती है. छोटी के बारे में वह यही सोचकर निश्चित थे कि वह फिलहाल पढ़ ही रही थी और इस तरह बहुत छोटी जान पड़ती थी—समस्या रहित. बड़ी के बारे में सोचते हुए उन्हें लगता था—खुद ही जिम्मेदार है, पढ़ा भी चुकी है, उल्टा-सीधा सब समझती है, जो भी फैसला करेगी, ठीक ही करेगी. जैसे फैसला उसी को करना था. अगर उसी को करना था तो बेशक वह कर भी चुकी थी.

वह पिता के इस हवेलीनुमा घर की दुनिया में व्याप्त धूल और जालों में पूरी तरह डूबी हुई थी. एक ठहरी हुई जिंदगी में चीजें होती ही कितनी हैं! पर बड़ी को उनके बीच फुर्सत ही न थी. चावल बिन रही है तो चावल ही बिन रही है. कपड़े धुले जा रहे हैं तो बस कपड़े धुले जा रहे हैं. वही-वही काम थे और उन्हीं-उन्हीं कामों में लगे रहना था. ऊब और सन्नाटे की मिली-जुली परछाई बड़ी की व्यस्तता के ऊपर मंडराती रहती. ऐसे घरों के कुछ अपने खास दुख होते हैं और अपने ही ढंग के अभाव भी—पर उनके बारे में अक्सर कोई जिक्र नहीं होता. सारे दुख चुपचाप जी लिये जाते. सभी तरह के अभाव स्मृतियों से भरे जाते हैं. . .पिता को पेंशन के पैसे मिलते थे, यह एक नियम था.

बाहर से वे दोनों भी कभी कभार कुछ भेज सकते थे पर वह कोई नियम न था.

छोटी को पता नहीं चला, वह चाय पीते, न पीते, क्या कुछ सोच गयी. अब उसने सिर उठाकर खिड़की की तरफ देखा—बड़ी जा चुकी थी. उसका मन सहानुभूति से दुखने लगा—जी हुआ कि उस खाली जगह को अपने में भर ले जो बड़ी के कमरे से जाने के बाद खाली हुई थी. छोटी ने अंदर जाकर चाय का प्याला धोया और उसे ठीक अपनी जगह पर रखकर किताबों के बीच वापस आ गयी. बड़ी अब अंगीठी सुलगा रही थी—इसका मतलब चाय उसी बिगड़े हुए स्टोव पर ही बन गयी —अभी बड़ी जलते-जलते बची थी उस दिन. जब तक वह चीख सुनकर पहुंची खतरा टल गया था और धुआं ही धुआं हवा में टंगा रह गया था. मां रही होंगी उस जनम में तभी तो इतना खयाल रख पाती हैं. मां की याद छोटी को अक्सर आती है.

अक्सर उसे लगता है वह मां के सिरहाने खड़ी है. मां का चेहरा कभी बल्ब की तरह तेज चमकता है फिर यकायक फ्यूज़ हो जाता है. शाम होते ही अक्सर मां का चेहरा छोटी के जेहन में उतर आता है.

▣

ऐसी ही शाम थी वह जब छोटी को कुछ पता न चला —कब पिता कमरे से निकले और दालान में गिर गये. दोनों दौड़कर उठाना चाहती थीं पर एक शिथिल भारी शरीर संभाल में नहीं आ रहा था. छोटी ने घबराकर पड़ोस में किसी को आवाज दी—फिर कई लोग आ गये. पिता हिदायतों के साथ कमरे में लिटा दिये गये. शरीर तप रहा था. बड़ी ने उसका माथा छुआ. "इन्हें आराम करने दीजिए," कहकर पड़ोसी चले गये. किसी को यह न सूझा कि इन्हें डॉक्टर की जरूरत भी हो सकती है. जरूरत थी भी नहीं. धीरे-धीरे हालत सुधर गयी. दोनों ने अनथक सेवा की. पिता बच गये. कुछ चीजें बिना कहे किये भी ठीक हो जाती हैं. पिता भी ठीक हो गये थे पर वही अपंग, पस्त पड़े रहने के लिए. व्यक्तित्व के नाम पर वही चेहरा शेष रह गया था जिसे सह पाना कठिन होता है.

छोटी का मन पढ़ने में नहीं लग रहा था. बेचैनी-सी हो रही थी. पेपर देना है—दे देंगे. देकर ही क्या होगा. कुछ फर्क पड़ जायेगा! इस पढ़ाई से कुछ निकलने वाला है. सबके सब रास्ते तो बंद हैं जैसे. वह भी धीरे-धीरे बड़ी का रास्ता पकड़ लेगी—उसी के मानिंद सूख जायेगी—हो सकता है पढ़ाने लग जाये. इससे तो उम्र का खिसकना और तेजी पकड़ता है. पहले वह भ्रम में थी. सोचती स्कूल की मास्टरनी सुखी जीव होती है—तबीयत की आजाद—सुविधा संपन्न—चाहतों से भरी—रख-रखाव में अनोखी और दुरुस्त. पर जब बड़ी ने दो साल उस जिंदगी की रगड़ खा ली तो यह गलतफहमी दूर हो गयी.

बड़ी पढ़ाने निकलती थी तो कुछ उम्मीदें बंधती थीं,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पढ़ाकर लौटती थी तो उसकी थकी चाल और बुझा चेहरा देखकर सारी उम्मीदें खत्म हो जाती थीं.

छोटी को सोचने की आदत पड़ गयी थी. सोचने का रोग लग गया था जैसे. किताबें खुली हों, सोचना नहीं रुकता था. कोई सामने बैठा हो, अपनी सनक में बतियाता जा रहा हो, छोटी के दिमाग में सोचने का सिलसिला बना रहता था. सोचती वह सबके बारे में.

उन दोनों के बारे में भी जो शहरों में अपने-अपने काम के बहाने जम गये थे और भूल गये थे कि उनका अतीत भी इस भुतहे मकान के पुराने-धुराने कपड़ों में जैसे तह करके रखा हुआ था. उस दिन सफाई करते हुए क्या-क्या चीजें निकली थीं भला—दोनों के कपड़े के जूते —सचमुच कपड़े के—जो उनके नन्हें-नन्हें पांवों के लिए मां के कभी सिले होंगे—मखमल पर जरी के काम के कुरते-टोपियां—किसी एक की कुंडली भी उन्हीं कपड़ों में निकल आयी थी—पर उन्हें अब अतीत से कोई मतलब न था. नौकरियां उनके लिए घर से बचने का बहाना थीं मानो. होली दशहरे पर वे आते भी तो अपने-अपने कमरों में बंद. अपने-अपने परिवार में लीन. छोटे को अकेले पत्नी ही उलझाये रखने के लिए काफी थी. कितना समय निकल गया.

छोटे की पढ़ाई जब तक चल रही थी, इन्हीं बहनों के बीच हमेशा बना रहता था—हर काम में हाथ बंटाता—भविष्य के सपने देता. पर कहां! अब तो वह बड़े से भी ज्यादा बेलगाव उदासीन दिखता.

छोटी ने देखा, बड़ी अंगीठी पर रोटियां सेंक रही है. सिक नहीं रही हैं रोटियां—इस परेशानी की आहट कभी-कभी उस तक पहुंचती है. बस आहट—कोई शिकायत नहीं. छोटी को लगा जिंदगी में कुछ करना होगा वरना वह भी सूख जायेगी. ठूंठ हो जायेगी बड़ी की तरह. सब थिर हो गये हैं, जम गये हैं, दुनिया से लगकर या दुनिया से अलग होकर. वह बहुत इंतजार नहीं करेगी—कुछ करेगी—इतनी जल्दी करेगी कि वे देखते रह जायेंगे. वे दोनों—जो उन शहरों में जाकर बैठे हैं—अपनी-अपनी सफलताओं पर भरमे हुए—बेखबर.

वह खबर होकर रहेगी उनके लिए. . . वह चुपचाप खत्म नहीं हो लेगी.

छोटी के दिमाग में कुछ मथने लगा. कुछ करेगी वह जरूर. पर क्या करेगी आखिर! भाग लेगी घर से. चुपचाप. किसी अजनबी का हाथ पकड़कर एक ओर हो लेगी. धमाका तो तभी होगा. कुछ अनैतिक करने के लिए एक प्रलोभन उसे व्यग्र बना रहा था. वह सुलग रही थी.

वह उन लड़कों के चेहरे याद करने लगी जो उसमें वक्त-बेवक्त दिलचस्पी दिखाते रहते थे. उनमें एक तो वह पत्रकार था मलिक—बात-बात पर लड़कियों के इंटरव्यू लेता फिरता, दूसरा एम. आर. . .नक्शेवाला. . .अपने को काफी खूबसूरत समझता था जो, तीसरा पोलिटिकल था.. .तीसरी दुनिया से नीचे की बात न करता. उनकी भी दिलचस्पी उसमें थी जो कुछ ज्यादा उमर वाले थे. . . एक वह बीमा कंपनी वाला. . .दूसरा . . .खैर बहुतेरे थे. . .

वह सबके विस्तार में नहीं जाना चाहती थी. वह जल्दी चुनना चाहती थी. जल्दी तोड़ना चाहती थी इस भ्रम को कि वे दोनों उम्र भर इन्हीं इन्हीं दीवारों में खपती चली जायेंगी. 'बताऊंगी तुम्हें एक दिन'. . .उसके भीतर डायलाग फूट रहा था. वह बड़ी की तरह प्रेम-वेम का चक्कर नहीं चलाना चाहती थी. वह जानती थी कि प्रेम किस बदहवासी में शुरू और किन बेवकूफियों में खत्म होता है. वह सीधे करना चाहती थी. वह अपने तरीके से सब तहस-नहस करना चाहती थी. सुखी जीवन को लेकर कोई वहम उसमें नहीं था. इस स्वार्थी दुनिया को बस वह बताना चाहती थी : मैं होश में हूं —मैं खत्म नहीं हो गयी हूं.

अगले दिन वह इम्तहान के लिए निकली तो जल्दी में न थी. लगभग गुनगुनाती हुई बस स्टॉप पर जा खड़ी हुई. हवा जरूरत से ज्यादा तेज चल रही थी . मौसम हर तरह से खुशनुमा लग रहा था. आसपास वाले सबके सब जैसे उसी की ओर देख रहे थे. उसे लगा कि सामने की कतार वाला लड़का उसे 'हलो ऽ' कह रहा था. सीटी मारने जैसे अंदाज में वह कुछ कह तो जरूर ही रहा था. उसने बस उसी अंदाज में 'हलोऽ ऽ' कर दिया. इशारा उतना ही उत्ते

रचना प्रक्रिया

कूड़े में फेंकने के बाद

▣ ए. के. क्रोनिन (अंग्रेजी लेखक)

मैं तैंतीस वर्ष का था और लंदन में डाक्टर की हैसियत से काम कर रहा था. पेट में फोड़ा हो जाने के कारण मुझे छह महीने के लिए एक पहाड़ी इलाके में जाकर आराम करना पड़ा, वहां गये अभी एक सप्ताह ही हुआ था कि मैं बुरी तरह उकता उठा. मुझे पूरा आराम करने के लिए कहा गया था. समय काटना मेरे लिए सबसे बड़ी समस्या थी.

उस निराशाजनक स्थिति में लगातार यह सोचते हुए कि क्या करूं, एक दिन अचानक मुझे एक बात सूझी. कई वर्षों से मैं यह भ्रम पाले हुए था कि शायद कभी लिखने लगूंगा. मुझे लगा कि लिखने का इससे अच्छा मौका और कौन–सा हो सकता है. सो, मैंने एक उपन्यास लिखने का फैसला किया. तभी मैं पास के गांव में गया और दो दर्जन कापियां खरीदकर ले आया.

अगले तीन महीनों तक मैंने लेखन के सिलसिले में न जाने कैसी-कैसी आत्मपीड़ाएं सहीं. हां, मेरे दिमाग में उपन्यास का विषय बिल्कुल स्पष्ट था—एक मनुष्य के अहंकार और झूठे गर्व के दुःखों की कहानी. यहां तक कि मैंने उपन्यास का नाम भी सोच लिया था.

लेकिन उपन्यास के विषय और नाम के अलावा मेरे पास और कुछ नहीं था. मुझे न तकनीक की जानकारी थी, न शैली या शिल्प का ज्ञान था. साफ, सरल स्पष्ट वाक्य लिखने में बड़ी कठिनाई होती थी. मैं अपने लिखे हुए को बार-बार काटता और सुधारता. इस काट-छांट से सारा पृष्ठ भर जाता. आखिर में उसे फाड़ डालता और नये सिरे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

से लिखने लगता.

मैं उपन्यास लिख चुका तो मुझे बड़ी उदासी महसूस हुई. मैंने खुद से पूछा, "भला, मैं ऐसे काम में इतनी मेहनत क्यों कर रहा हूं, जिसके लिए मुझमें कोई योग्यता नहीं है. मुझे तो आराम करना चाहिए, अपनी शक्ति संचित करनी चाहिए, न कि इस प्रकार समय बरबाद करना चाहिए."

इसी मानसिक स्थिति में मैंने उपन्यास के शुरू के अध्याय पढ़े, जो लंदन से मेरे सेक्रेटरी ने टाइप करके भेजे थे. मैं स्तंभित रह गया. ऐसी बेहूदगी मैंने अपनी सारी जिंदगी में कभी नहीं देखी थी. आखिर मुझे लगा कि यह पागलपन है. जो कुछ मैंने लिखा है और जो कुछ भी आगे लिखूंगा, व्यर्थ में समय गंवाने वाली बात है. सो, मैंने उस काम को वहीं छोड़ देने का इरादा किया. मैंने गुस्से में आकर सारे कागज कूड़े-कर्कट के डिब्बे में फेंक दिये.

उपन्यास से छुटकारा पाकर, या कहूं कि इस पागलपन से छुटकारा पाकर मुझे संतोष हुआ और मैं वर्षा की मंद-मंद फुहार में भीगता हुआ चल पड़ा. कुछ आगे जाने पर श्रीमती आंगस के पति से मुलाकात हुई. उन्होंने मेरी ओर कुछ हैरानी से देखा. जब मैंने उन्हें बताया कि मैं अभी-अभी क्या करके आया हूं तो उनके झुर्रियों भरे चेहरे पर धीरे-धीरे परिवर्तन होने लगा. उनकी गहरी नीली आंखों ने मेरी ओर निराशा और अजीब-सी घृणा से देखा. वे चुप रहे और फिर काफी देर के बाद बोले :

"बेशक, आप सही हो सकते हैं और मैं गलत हो सकता हूं. . . मेरे पिता ने सारी उम्र इस दलदली जमीन को खोदा था और इसे चरागाह नहीं बना पाये थे. मैंने भी जिंदगी भर इसे खोदा है और इसे चरागाह नहीं बना पाया हूं. उन्होंने कुदाल पर पांव रखा, लेकिन खोदने से मैं रह नहीं सकता हूं. मेरे पिता जानते थे और मैं भी जानता हूं कि अगर काफी खुदाई की जाये तो यहां चरागाह बन सकता है."

मैं भीगा हुआ उसी हालत में वापस आया. कूड़े-कर्कट के डिब्बे में से मैंने अपना उपन्यास निकाला और रसोई में जाकर उसे चूल्हे पर सुखाने लगा. फिर उसे मेज पर पटका और एक नये जोश के साथ काम करने लगा. अपने मनोरथ की पूर्ति के लिए मैं काम में डूब गया.

तीसरे महीने के अंत में मैंने उपन्यास पूरा कर लिया. उस समय मैंने जो राहत की सांस ली, उसका वर्णन नहीं कर सकता. मैंने उपन्यास एक प्रकाशक को भेज दिया और उसके बारे में भूल गया.

जो उपन्यास ('हैटर्स कैसल') मैंने फेंक दिया था, वह छपने पर एक 'बुक-क्लब' द्वारा चुना गया. उसके आधार पर नाटक लिखा गया. उसे धारावाहिक रूप से छापा गया. उसका उन्नीस भाषाओं में अनुवाद हुआ. और हॉलीवुड द्वारा फिल्म के लिए खरीदा गया. उसकी लगभग तीस लाख प्रतियां बिकीं. उसने मेरी जिंदगी का रुख ही बदल दिया, और मैं वह कुछ बन गया, जिसकी मैंने कभी कल्पना भी नहीं की थी. अगर श्री आंगस मुझे दृढ़ता का पाठ न पढ़ाते, तो मैं शायद वह कुछ न बन पाता, जो आज हूं—एक लेखक. □

उतनी ही बेफिक्री लिये हुए था. लगा कि पहली बार जो भी मिलेगा वह उस पर झपटकर ही चैन लेगी. बहुत देर नहीं हुई है, जैसे वह अपने से ही कहना चाहती थी. वह जैसे नींद की दुनिया में थी और उड़ रही थी.

तभी अचानक बस आ गयी. सभी उधर ही लपके. वह भी अचानक हताश बस में दाखिल हुई और कोने वाली परिचित जगह में जाकर जम गयी. वह किसी से आंख नहीं मिला पा रही थी. उसकी आंखों के आगे किताब का वह पन्ना खुला था, जिसमें इम्तहान के मतलब के नक्शे और चार्ट बने थे. वह उसी में सिर झुकाये अपनी दुनिया की थाह ले रही थी. वह कुछ नहीं कर सकेगी शायद.

वही करेगी, जो कर रही है, वे दोनों इस घर को किसके सहारे छोड़ेंगी—पिता का क्या करेंगी. वही-वही चेहरे उसके सामने उभरने लगे थे.

इधर की ओर वे दोनों तो अब शायद रुख भी न करें. कितने महीने निकल गये. कोई खबर है! हो सकता है, दोनों अपना-अपना तबादला और दूर की जगहों में करा लें—दूर ही दूर होते चले जायें. छोटे ने पिछली बार कहा भी था कि वह कुछ दिनों के लिए 'बाहर' जाना चाहता है. 'बाहर' से खास मतलब था उसका. "अगर बैंक वालों ने भेज दिया तो ठीक है, नहीं तो हम लोग ही कुछ करेंगे." उसकी पत्नी इस बात पर किलक रही थी, "हाय बाहर! कितना अच्छा होगा सब कुछ! यहां तो भई तंग आ गये. वही-वही शहर देखकर. हमारे दद्दा तो एक बार स्टेट्स गये तो फिर लौटे ही नहीं." "क्यों लौटेंगे." —बड़ा समर्थन कर रहा था, "हिंदुस्तान में रखा ही क्या है! पूरी उम्र खपा दो. एक शानदार जिंदगी गैर-मुमकिन ही बनी रहेगी."

छोटी बस में चलते-चलते उनकी शानदार जिंदगी का धक्का महसूस कर रही थी. उसे लगा कि वह बस में नहीं है, उसी कोठरी में पड़ी है, जिसमें पिता पड़े हैं—अपंग, पस्त, उसी घर में दफन है. जिसमें बड़ी रोटियां सेंक रही है—बिना जाने हुए कि क्यों? □

● बी 70, आवास विकास कॉलोनी, सूरज कुंड, गोरखपुर 273001

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पेरिस की डायरी

• विनोद भारद्वाज

पेरिस जल नहीं रहा है सिर्फ मैट्रो के सफाई मजदूर हड़ताल पर हैं.

पेरिस : 30 मार्च, 80

आधुनिक मशीनी जिंदगी के खिलाफ फ्रांस में मई, 68 के छात्र आंदोलन का एक प्रमुख नारा था : 'मैट्रो-बूलो-दोदो' (मैट्रो-काम-नींद). मैट्रो का यहां की जिंदगी में विशेष महत्व है. मैंने सुना था पेरिस का मैट्रो लंदन के मैट्रो (अंडरग्राउंड) से कहीं ज्यादा साफ-सुथरा और चमकीला है. लेकिन इन दिनों यहां मैट्रो के सफाई मजदूर हड़ताल पर हैं (उनमें से बहुत से मजदूर गैर-फ्रांसीसी हैं) और जगह-जगह पर गंदगी दिखती है. पीले टिकटों के ढेर कहीं भी मिल सकते हैं. इससे यहां की 'मैट्रो संस्कृति' को काफी धक्का पहुंच रहा है.

और सचमुच पेरिस में मैट्रो की एक पूरी विकसित संस्कृति है. सुंदर और लुभावने विज्ञापनों से भरे ये स्टेशन मैट्रो के सफर की नीरसता को काफी कम कर देते हैं, लेकिन जैसे यह काफी नहीं हैं. कठपुतली नृत्य, बैले, संगीत वगैरह के 'मुफ्तिया' कार्यक्रम यहां हर वक्त चलते रहते हैं. आपकी मर्जी है तो एक-दो फ्रांक फेंक दीजिए (एक फ्रांक की कीमत 1.80 रुपये). इधर-उधर भागते हुए लोग अचानक किसी अफ्रीकी दल को अपने तेज संगीत का कार्यक्रम प्रस्तुत करते देख रुक जाते हैं. कुछ देर मन बहल जाता है, फिर आप अगली गाड़ी पकड़ने का रास्ता खोजिए.

कुछ मैट्रो स्टेशन तो सचमुच एक बड़ा सुपर बाजार ही बन गये हैं. शातले (जो कि पेरिस के बिलकुल केंद्र में है) में एक खूबसूरत बहुमंजिला बाजार है. वहां पर बढ़िया किस्म का संगीत बजता रहता है. आप चाहें, तो कुछ आराम कर सकते हैं, पढ़ सकते हैं. कुछ खरीद सकते हैं. शातले का स्थापत्य भी काफी दिलचस्प किस्म की कला है और स्टेशन से थोड़ी दूर बने प्रसिद्ध **पांपिदू सांस्कृतिक केंद्र** के अद्भुत स्थापत्य से उसका एक सतही संबंध भी है.

इफेल टावर वगैरह अब पेरिस के पुराने प्रतीक हो चुके हैं. पेरिस की नयी पहचान पांपिदू केंद्र है जो आधुनिक कला का एक अद्भुत केंद्र है. इस बहुमंजिली इमारत को दूर से देखकर यह नहीं लगता कि यह कोई कला केंद्र है. किसी बड़ी फैक्ट्री या सुपर-बाजार की तरह की यह जगह अभी कुछ ही साल पहले बनी है.

आज सुबह से पेरिस में हल्की बारिश हो रही है. इसलिए पांपिदू केंद्र में काफी भीड़ है. भीड़ का एक कारण प्रसिद्ध कलाकार **डाली** की विशाल प्रदर्शनी है जो दो हफ्ते बाद हटा ली जायेगी. टिकट की लंबी लाइन में लगने से पहले हल्की बारिश में मैं बाहर उस कलाकार के संगीत को कुछ देर तक सुनता हूं जो आरी को वायलिन की तरह के एक वाद्ययंत्र में बदलकर संगीत पैदा कर रहा है. पेरिस की एक बड़ी खासियत इस तरह के कलाकार हैं. कुछ दूर पर एक कलाकार बांसुरी से मोत्सार्ट का मीठा संगीत पैदा कर रहा

लंदन के बड़े संग्रहालयों की तरह पेरि के कला-संग्रहालयों में प्रवेश निःशुल्क न है. काफी महंगे टिकट हैं. पांपिदू केंद्र अगर आप एक दिन में सब कुछ देख ले चाहते हैं (जो कि दरअसल एक असं काम है) तो चौदह फ्रांक का टिकट बहरहाल डाली की प्रदर्शनी के बारे में इतना ज्यादा पढ़ा था कि पेरिस का पह दिन पांपिदू केंद्र में ही बिताने की इ थी. टिकट काउंटर तक पहुंचने का नं आया, तो अब लिफ्ट की भयंकर भीड़ ऊपर जाने की लंबी लाइन थी. भारत व्यक्ति के लिए यह कोई मुश्किल चीज न है, पर फ्रांसीसी लड़के जिस तरह का और शरारतें कर रहे थे, उससे लग रहा कि पांपिदू केंद्र उनके लिए कोई मछली जैसी चीज है.

और सचमुच यह केंद्र स्टील और शी में जिस तरह से खड़ा है—बारिश में मछलीघर सरीखा ही हो गया था. धी धीरे किसी तरह से लोग ऊपर की ओ बढ़ रहे थे. पर पेरिस की इमारतों आनंद उठाने का इससे बढ़िया तरीका नहीं है. और चूंकि पेरिस के केंद्र इमारतों का पुरानापन काफी सुरक्षित इसलिए सचमुच बड़ा अच्छा लगता बल्कि यहां कुछ लोग तो इस बात से दुखी हैं कि पांपिदू केंद्र जैसी आधु इमारत पेरिस के इस पुराने केंद्र के आक को भ्रष्ट करती है.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

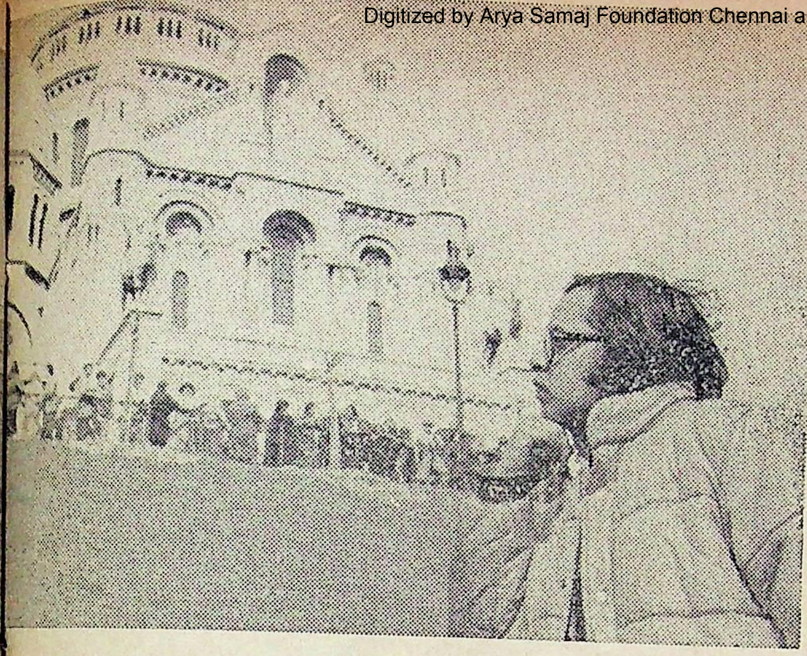

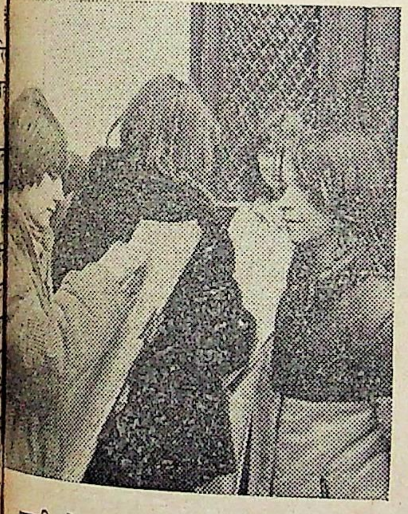

(ऊपर बायें) पिगाल का ऐतिहासिक स्थल मोलां रुश. (ऊपर) सार्क्रे-कर के प्रसिद्ध गिरजे के सामने लेखक. (नीचे) मों-मार्त्र के चित्रकार [सभी फोटो : पंकज सिंह]

डाली के बारे में सोचते हुए हमारे दिमाग में सबसे पहले पिघलती हुई घड़ियों का चित्र आता है. लेकिन डाली ने अपनी सारी जिंदगी में जितना काम किया है, ये चित्र उसका एक मुख्य हिस्सा ही कहे जा सकते हैं. डाली की कला अतियथार्थवाद और दादावाद.के निकट होते हुए भी इनसे परे है. इस प्रदर्शनी में दुनिया भर के संग्रहालयों से डाली के काम को एकत्रित किया गया है. खास आकर्षण डाली के बनाये आभूषण (जो सचमुच देखने वाले हैं!) और उनकी पोर्नोग्राफी प्रधान कला है. डाली और बुन्युल की बनायी फिल्म बराबर चल रही है. वीडिओ पर डाली बराबर कुछ बोल रहे हैं. डाली के पोस्टर, डाली के मूर्तिशिल्प, कैनवास, रेखांकन,

. . . . आखिर आप थककर किसी पाइप पर बैठ जाइए और पेरिस को कला की ऊंचाई से देखिए. डाली पिकासो नहीं हैं लेकिन वे डाली हैं.

फ्रांसीसी लोग 'शुक्रिया', 'क्षमा करें' (मेर्सी, पार्दों, सिल्वू प्ले आदि) जैसी चीजों का इस्तेमाल जितना ज्यादा और एक सांस में जिस तरह से करते हैं, वह एक अलग ही चीज है. पेरिस में अफ्रीकी लड़के खूब दिखते हैं. मस्त फ्रांसीसी लड़कियों के साथ बांहों में बांहें डाले घूमते हैं. पहनावे में अफ्रीकी छात्र कुछ अलग ही दिखते हैं. अक्सर सूट और टाई में कसे हुए, साहब सरीखे. पर फ्रांसीसी भाषा ने उन्हें पेरिस में अपना-सा बना दिया है, जो काम अंग्रेजी भाषा लंदन में नहीं कर सकती.

सुना है यहां 'सूटेड-बूटेड छात्रों' के साथ पुलिस अच्छा व्यवहार करती है. लंबे बालों वाले हिप्पीनुमा लड़के अक्सर उनकी नजरों में खटकते हैं. यहां की पुलिस की वेशभूषा बड़ी आकर्षक है और अगर आप पेरिस में रास्ता भटक गये हैं तो जो थोड़ी-बहुत मदद आपको मिल सकती है वह पुलिस से ही. वह भी ज्यादा नहीं. और आपको अगर फ्रांसीसी भाषा नहीं आती तो भले ही आप दस दिन के लिए पेरिस में हैं—कुछ भाषा सीखिए नहीं तो दिक्कत में रहिए. खैर, पुलिस के पास आप जाइए तो बड़े कायदे से सलाम के साथ आपका स्वागत और विदाई होती है. कोई बड़ी बात नहीं—पुलिस के सिपाही से आप लूव्र का रास्ता पूछ रहे हैं और वह आपको बताना शुरू कर दे कि क्या देखना वहां ठीक रहेगा इन दिनों. . . (लेकिन फ्रांसीसी आप जानते हों—तभी न!)

1 अप्रैल

पिछले कई दिनों से अंग्रेजी अखबार उपलब्ध न होने के कारण आज यह समाचार पता चला कि **रोलां बार्थ** का एक सड़क दुर्घटना के बाद अस्पताल में निधन हो गया. **सार्त्र** काफी ज्यादा बीमार हैं—यह भी खबर आज ही मिली है. बार्थ से अभी अनेक महत्वपूर्ण पुस्तकों की उम्मीद थी—उनके पाठकों को—यह एक बड़ा दुखद समाचार है और पेरिस की जिंदगी का एक ऐसा पक्ष भी इससे पता चलता है, जो एक रोग का रूप ले चुका है.

फ्रांस पियक्कड़ों का देश है. यहां पीकर गाड़ी चलाने की सख्त सजा है पर पीने वालों से यहां बचना आसान नहीं है. जिस देश में हर 53वां आदमी बाकायदा शराबी (एल्कोहोलिक) है—शराब से 55 लोग जहां रोजाना मरते हैं, वहां आप क्या आशा कर सकते हैं! विडंबना यह है कि एक खबर ने इन आंकड़ों के साथ बार्थ को ही उद्धृत किया है : 'फ्रांसीसी लोग धुत हो जाते हैं चूंकि वे पीते हैं. लेकिन वे इसलिए नहीं पीते कि धुत हो जायें.'

बहरहाल फ्रांसीसियों को अपने पीने पर नाज है. एक काफे (पेरिस की काफे संस्कृति सचमुच आकर्षक है) में मैं बार काउंटर पर बैठा बेयरे को देखकर काफी देर तक मजा लेता रहा. वह बड़ी फुर्ती से कॉफी, बीयर, सॉसेज, वाइन वगैरह के ऑर्डर ले रहा था, सिक्के ले रहा था. . लौटा रहा था, पर बीच-बीच में अपने सफेद वाइन के गिलास में से वह चुस्कियां लेना बिल्कुल नहीं भूलता था. बीच-बीच में कुछ खास ग्राहकों से वह बात भी करने लग पड़ता था—दोस्ताना बातचीत.

इस तरह के काफे वक्त बिताने के लिए हैं—आप चाहें तो सड़क का आनंद उठाते हुए कुछ लिखते-पढ़ते रहिए. मेज पर बैठने के लिए कीमत थोड़ी ही ज्यादा है. पर आप

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

को कोई बीच-बीच में आकर टोकेगा नहीं. अक्सर धूप निकलने पर काफे के बाहर लोग कुछ इस तरह से लोगों की तरफ मुंह किये बैठे होते हैं जैसे स्टेडियम में बैठे कुछ देख रहे हैं.

इस तरह का सबसे अनोखा वातावरण कार्तिए-लैतें (लेटिन क्वार्टर्स) की गलियों में शाम के बाद से रात तक रहता है. अभी पर्यटकों का मौसम ठीक से शुरू नहीं हुआ है, पर इन गलियों में घूमना आसान नहीं है. सारबोन के छात्र यहां देर तक बहसों में व्यस्त दिखते हैं.

2 अप्रैल

पेरिस के बारे में सपाट ढंग से कहा जा सकता है कि यह कला संस्कृति की राजधानी है. लेकिन यह सचमुच आश्चर्य की बात है कि फिल्म, रंगमंच, चित्रकला, बैले, ऑपेरा, संगीत वगैरह के जितने कार्यक्रम यहां एक साथ होते रहते हैं, वे किसी भी संस्कृति प्रेमी को अंत में दुखी कर सकते हैं. शांजेलिजे के चमकदार बाजार में 'लास्ट टैंगो इन पेरिस' आज भी यहां चल रही है. "एमानुएल" (बहुचर्चित पोर्नोग्राफिक फिल्म) न जाने कब उतरेगी. अच्छी-खराब फिल्में सब देख सकते हैं. फिल्म शुरू होने से थोड़ा पहले ही टिकट मिलेंगे और जो लड़की आपको सीट पर बैठाने जायेगी (सीट नंबर नहीं रहता) उसे टिप देना जरूरी है. पेरिस में पहली बार फिल्म देखते वक्त मेरे मित्र ने मुझे अंतिम मौके पर हड़बड़ी में दो फ्रांक सिक्के दिये कि इस लड़की को टिप देना जरूरी है. इसकी आय का स्रोत सिर्फ टिप है. पेरिस में मुफ्त में तो खैर पेशाब करना भी संभव नहीं है—इमारतों को बाहर से ज्यादा देर तक देखने के लिए भी कहीं टिकट न लगा दिया जाये. यों इन दिनों यहां फ्रांसीसी भी हर वक्त 'फ्रांक-फ्रांक' करते रहते हैं. बेचारा भारतीय पर्यटक और उसके डॉलर!

3 अप्रैल

सार्त्र की एक बातचीत कुछ साल पहले किसी अमेरिकी पत्र में पढ़ी थी जिसमें उनसे भेंटकर्त्ता ने मोना लिजा के जलाये जाने के बारे में सवाल किया था—मई 68 के आंदोलन के संदर्भ में. सार्त्र का जवाब था कि चीजों को जलाये जाने के बारे में वैसे मैं बराबर बहस की गुंजाइश समझता हूं, लेकिन मोना लिजा अगर जला दी जाये, तो मुझे कोई खास चिंता नहीं है.

जाहिर है इस बात से अधिकांश लोग सहमत नहीं होंगे. मोना लिजा के पास पहुंचते ही दिमाग में अंग्रेजी का शब्द 'मिस्ट्री' (रहस्य) अपने-आप ही दिमाग में बजने लगता है. लूव्र के विशाल गलियारों और वीथियों में कोई भी आदमी बदहवास हो सकता है. मोना लिजा की बगल से एक बार तो मैं आगे बढ़ गया—उस तरफ ध्यान ही नहीं गया. आगे जाकर एक निशान देखा—'मोना लिजा'— तो लौटा. चित्र के सामने कुछ लोग एक टेलीफोननुमा यंत्र लिये खड़े उस रहस्यमय मुस्कान का आनंद ले रहे थे. एक फ्रांक देकर मैंने भी वह यंत्र लिया और मोना लिजा की कहानी सुनते हुए कलाकृति को समझना चाहा. लेकिन व्यक्तिगत रूप से मुझे लियोनार्दो विची की कुछ दूसरी कलाकृतियां ज्यादा पसंद आयीं जो मोना लिजा के पास ही अपने बिना हलचल वाले इतिहास के साथ लटकी हुई हैं.

लूव्र में दुनिया भर की कला का अमूल्य खजाना है—तीसरी दुनिया के देश अब इधर सतर्क हुए हैं कि हमारी कला का खजाना फ्रांसीसियों का गौरव क्यों हो! पिछले वर्ष फ्रांसीसी प्रधानमंत्री इराक तेल का सौदा करने गये, तो इराक ने एक अजीबोगरीब मांग की : लूव्र में हमारी प्राचीन सभ्यता का सर्वोत्कृष्ट प्रतीक **हम्मुराबी का गुप्तलेखन** हमें लौटाओ. (इराकी बच्चों को यह बरसों से पढ़ाया जाता रहा है कि इस प्रतीक को फ्रांसीसी हमारे यहां से चुरा ले गये थे!) ऐसी चर्चा है कि लूव्र इराक को यह प्राचीन प्रतीक उधार पर कुछ समय के लिए देने की सोच रहा है. लेकिन लूव्र के पास दुनिया भर का जो कला खजाना है उसे यों लौटाया जाने लगा, तो फ्रांसीसी क्या करेंगे! जाहिर है कि उन्होंने सब कुछ लूटा ही नहीं है, खोजा भी है, रखा भी है. बड़ी मेहनत और प्यार से. वैसे इराक के इस प्रतीक पर ईरान भी दावा कर सकता है, जहां खुदाई में यह मिला.

4 अप्रैल

नोत्रे दाम गिरजे की बगल में एक दिलचस्प दृश्य देखा. एक स्कूल बस के पास बच्चों की एक कतार लगी हुई थी और एक बच्चे के चूतड़ पर मास्टर साहब

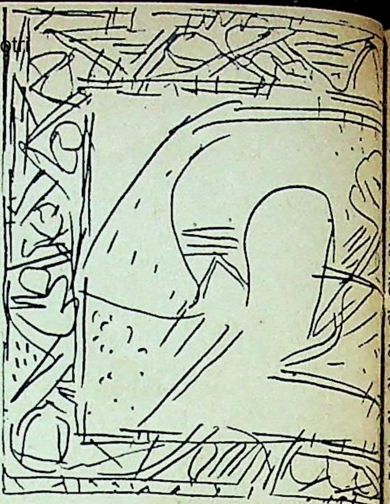

रजा का एक ताजा रेखांकन

पिटाई का सिलसिला चलाये हुए थे. मा पड़ा—कवि मित्र **पंकज सिंह** से—कि में बच्चों को सर या मुंह पर नहीं मा जा सकता, क्योंकि उससे बच्चे को गं शारीरिक क्षति पहुंच सकती है.

नोत्रे दाम के पास ही अंग्रेजी पुस् की एक ऐतिहासिक दूकान है—'शेक्सपि एंड कंपनी', जिसका इतिहास हे जैसे लेखकों से जुड़ा है. यह बड़ी पु दूकान है जिसमें लेखक कवि बड़े वातावरण में पढ़ते-बतियाते मिलते दूकान के ऊपरी हिस्से में बहुत पु किताबों और पुरानी लकड़ी की गं बीच समय बिताना निश्चय ही एक रहने वाली चीज है. . .पंकज सिंह ने बता वे अक्सर अपना वक्त वहां गुजारते

लूव्र या प्रभाववादियों के प्रसिद्ध हालयों में तो हमेशा इतनी भीड़ रह कि किसी चर्चित कलाकृति को ठी देख पाना आसान नहीं है. लेकिन संग्रहालय भीड़ से थोड़ा बचा हुआ है शायद यह पेरिस का एक सबसे मह संग्रहालय है. दरअसल यह एक बड़ा जिसके पीछे एक बड़ा सुंदर बगीचा इस घर में **जां कोक्तो** भी रह रोदैं के मूर्तिशिल्प इस घर में बड़ी सं एकत्रित हैं जिनमें रोदैं की कल्पना के अविस्मरणीय रूप हैं. बालजा बहुचर्चित प्रतिमा बाहर बगीचे अद्भुत नजर आती है. प्रेम और का काव्यात्मक व्याख्या रोदैं की अनेक कृतियों में है. एक कृति 'थकान' ने प्रभावित किया. पहली बार किसी कृति को देखकर कविता लिखने की

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जबरदस्त इच्छा हुई. . .

पिगाल की बदनाम गलियां ऊपर साक्रे-कर के पवित्र गिरजे में ले जाती हैं जहां से बहुत ऊंचाई पर चढ़कर पेरिस दिखता है. गिरजे के ठीक नीचे मों-मार्थ्र के सड़क छाप कलाकारों की भीड़ किसी सब्जी बाजार का 'सुख' देती है. अपनी तस्वीर बनवाते पर्यटक कभी-कभी तो हास्यास्पद नजर आने लगते हैं. पिगाल की सेक्स दूकानों, नंगे नाचों और वेश्याओं का 'ग्लैमर' अब बहुत कम हो गया है. इसके लिए पर्यटक एमस्टरडैम और हांबुर्ग (रीपरबान) जाते हैं.

5 अप्रैल

पेरिस में बस गये भारतीय चित्रकार रजा के साथ एक दोपहर बिताने का मौका बड़ा सुखद रहा. रजा उन चित्रकारों में से हैं जो बड़े जितने भी हों, आदमी के रूप में बहुत सहज और आत्मीय हैं. पेरिस में उनके घर में पंकज सिंह के साथ गया. एक पुरानी-सी इमारत के भीतर एक अच्छी-खासी बड़ी जगह है. रजा ने इस जगह को हाल ही में खरीदा है. उनके कमरे में उनकी अनेक नयी कलाकृतियां देखीं जो जल्दी ही नार्वे में एक प्रदर्शनी में जाने वाली थीं. रजा को मैंने बताया कि किस तरह से पेरिस के अद्भुत कला संग्रहालयों से मैं लगभग परेशान हो गया हूं.

रजा की बात सुनकर मुझे बहुत संतोष हुआ चूंकि संग्रहालय देखने के उसी फार्मूले को मैं अपनाता रहा था. उन्होंने कहा, एक दिन में इस काम के लिए दो घंटे से ज्यादा मत रखिए. नहीं तो परेशान हो जायेंगे.

रजा से बहुत बातें हुईं—भारतीय कला से लेकर हिंदी कविता तक (उन्हें हिंदी बहुत अच्छी आती है). शाम को मेट्रो स्टेशन (शारों) की सीढ़ियों पर विदा के वक्त रजा ने एक बहुत अच्छी बात कही कि हम भले ही न्यूयॉर्क और पेरिस को जीत लें, दिल्ली आसान नहीं है. कला बाजार इन दिनों पेरिस के नियंत्रण में नहीं है. प. जर्मनी और स्कैंडिनेवियाई देश पेरिस के कलाकारों के काम को खरीद रहे हैं.

7 अप्रैल

कार्तिए-लेतैं की एक भीतरी गली के सिनेमाघर में पासोलीनी की 'सालो' रात साढ़े आठ बजे दिखायी जाने वाली थी. काफी वक्त था. मैं अपने मित्र **श्रणिक कुमार लूंकड** और उनकी पत्नी के साथ सामने नुक्कड़ के एक काफे में बैठ गया. बहुत देर तक बैठना पड़ा. सामने शीशे से एक बहुत बूढ़े आदमी को धीरे-धीरे सड़क पार करते हुए गिरता हुआ देखना बहुत देर तक परेशान किये रहा. वह आदमी सड़क के बीचों-बीच एक घोड़े की तरह पसर गया और फिर बहुत ही धीरे-धीरे उठकर सड़क पार कर सका. कई लोग पास से गुजरकर आगे बढ़ गये.

पेरिस के कुछ छोटे-छोटे सिनेमाघर ऐसे हैं कि अचानक फिल्म के बीच छत पर से बड़ी जोर से फ्लश की जंजीर खींचने की आवाज आपको एक नया ही साउंडट्रैक सुना सकती है! पर्यटक दर्शक हैरान होकर ऊपर देखने लग पड़ते थे. 'सालो' में द साद की परपीड़न का ग्राफिक चित्रण करने वाली स्वैर कल्पना में हगना-मूतना वैसे भी बहुत महत्वपूर्ण था . . .

ऑटोबस का ड्राइवर कोई अफ्रीकी है. सामने किसी कार से हल्की-सी टक्कर के बाद अच्छा-खासा हंगामा मचा हुआ है. पके बालों वाला बूढ़ा आसमान सर पर उठाये हुए है. नुकसान का हिसाब-किताब लड़-झगड़कर और कागज-पत्रों के जंगल में हो रहा है. आखिर वह अफ्रीकी ड्राइवर रेडियो से अपने मुख्यालय से संदेश पाता है कि कागजों पर दस्तखत कर दो. तभी कार के मालिक की बीवी भी लड़ने के लिए आ जाती है. फ्रांसीसी बोलते तो बहुत हैं ही. एक यात्री परेशान होकर कार मालिक से कहता है कि तुममें पके बालों के बावजूद समझ की कमी नजर आ रही है. बीस मिनट की चकचक के बाद भी कोई समझौता होते न देखकर यात्री दूसरी ऑटोबस में लद जाते हैं. मेरा खयाल है भारत में किसी साहब की गाड़ी के साथ ऐसा होता, तो विदेशी पर्यटकों को देखकर वह शायद थोड़ी-बहुत बहस करके अपना रास्ता लेते. कार में उस टक्कर से जो नुकसान हुआ था, वह एक खरोंच के बराबर होगा.

8 अप्रैल

'एयर इंडिया' के एक जहाज के रद्द हो जाने की वजह से मुझे पेरिस की अंतिम शाम एक आलीशान होटल में बितानी पड़ी—दूसरे यात्रियों के साथ —उनमें से कुछ भारतीय भी हैं. अब आज दोपहर रोम जाकर 'एयर इंडिया' का जहाज मिलेगा. कल रात खाने के वक्त पर होटल के रेस्तरां में मैं ऑर्डर देकर अकेला बैठा हुआ था कि स्विटजरलैंड के एक भारतीय प्रोफेसर मिल गये जो वर्षों बाद कुछ दिनों के लिए भारत जा रहे थे. उनका विषय विज्ञान था. काफी युवा दिख रहे थे, पर थे अच्छी-खासी उम्र के. खाने पर काफी लंबी बात होती रही. आखिर हम सभी वहां वक्त काट रहे थे. लाल वाइन ने हम दोनों को काफी देर तक बात करने में मदद दी. दिल्ली-बंबई के रेलवे स्टेशनों और हवाई अड्डों के बारे में वे मुझसे कुछ जानकारी चाह रहे थे. भारतीय हालत से वे काफी निराश दिखे. बोले, कुछ नहीं हो सकता. इस हालत के लिए दोषी आप हैं (जोर से) और 'मैं हूं' (दबे स्वर में). मैंने उनसे सिर्फ इतना कहा कि यूरोप के कुछ हिस्सों में दो बार थोड़ा-थोड़ा रहकर मुझे यहां की जिंदगी बड़ी उत्साहजनक नहीं दिख रही है. बावजूद इसके कि मेरे जैसे लोगों के लिए यूरोप में देखने-जानने के लिए बहुत कुछ है. "पालम पहुंचकर बहुत चीजें मुझे निराश करती हैं. अचानक धक्का-सा लगता है. पर मैं भारत से घबड़ाना नहीं चाहता हूं. . ." लेकिन वे भारत से काफी घबड़ाये हुए थे और वेटर से बराबर सलीके की फ्रांसीसी बोलकर और मेज पर पड़े स्पानी संतरे को बहुत कायदे से काटते हुए लाल वाइन की रोशनी में धीमे-धीमे मुस्करा रहे थे. ☐

■ **विनोद भारद्वाज**
जन्म: अक्तूबर 1948
1979 में जर्मनी और लंदन की यात्रा कर चुके हैं. इस वर्ष मार्च-अप्रैल के दिनों में चेकोस्लोवाकिया, पोलैंड की यात्रा के दौरान पेरिस भी गये. सारिका के पाठक उनके कथाकार रूप के साथ-साथ 'साक्षात्कार' स्तंभ के अंतर्गत प्रकाशित वार्ताओं से परिचित हैं. पहला कविता संग्रह 'जलता मकान' अभी हाल ही में छपा है, समीक्षात्मक टिप्पणियों का संग्रह छप रहा है. संप्रति 'दिनमान' में.

● **एफ-16, प्रेस एन्क्लेव, साकेत, नयी दिल्ली-110017**

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

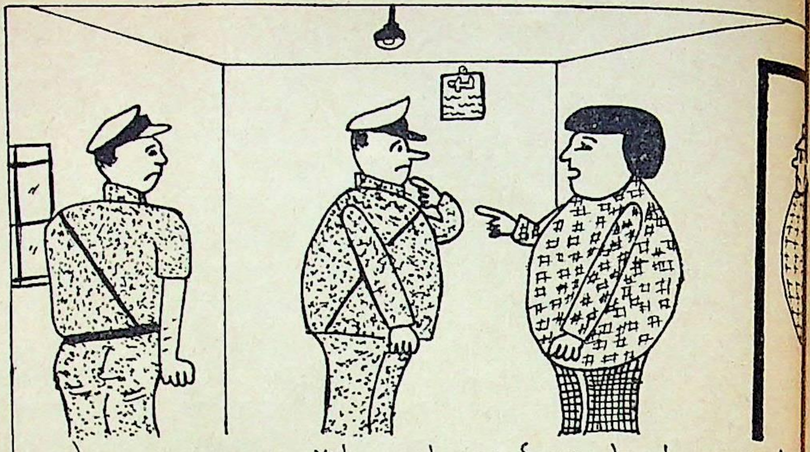

दारोगा साहब आज मैंने अपने घर 'कल करे सो आज कर' का बोर्ड लगाया थोड़ी ही देर बाद मेरा नौकर सारे पैसे ले कर भाग गया। . रवि

गपशप

एक व्यक्ति पैसों के मामले में काफी परेशान हो एक मनोचिकित्सक के पास आया. मनोचिकित्सक ने उसे सांत्वना देते हुए कहा, "चिंता मत करो. कुछ दिन पहले ऐसा ही एक रोगी मेरे पास आया था, उसे किसी दर्जी का बहुत बड़ा बिल देना था. मैंने उसे सलाह दी कि सब भूल जाओ और कुछ दिन में वह ठीक हो गया. अब तुम अपनी चिंता का कारण बताओ."

"मैं ही तो वह दर्जी हूं." उसका संक्षिप्त-सा जवाब था.

▣

"अब तुम्हीं बताओ कि ऐसी कौन-सी बात रह गयी है, जो मैं तुमसे कहूं, ताकि तुम मुझ पर विश्वास कर सको?" प्रेमी ने शक्की प्रेमिका से कहा.

"सिर्फ तीन शब्द."

"क्या?"

"दस लाख रुपये." जवाब था.

▣

एक बीमा एजेंट बहुत दिनों से किसी ग्राहक को नहीं फांस पाया था. अंत में उसने एक कंजूस सेठ की सेक्रेटरी को इस बात के लिए तैयार कर लिया कि वह फोन पर सेठ से उसकी बात करा देगी. उसने अपनी बात सेठ के सामने रखी. सेठ ने पहले ही वाक्य में पूछा, "तो आप बताइए, मुझे कितनी रकम की पॉलिसी लेनी चाहिए. . ."

एजेंट को इसकी उम्मीद तक न थी. वह गड़बड़ा गया, "क्षमा कीजिए, मुझे लगता है, गलत नंबर मिल गया है."

▣

एक गाड़ी कीचड़ में फंस गयी थी. कुछ ग्रामीणों ने धकेलकर उसे बाहर निकाला. गाड़ीवाले ने उन्हें उचित पारिश्रमिक देते हुए कहा, "यहां तो बहुत कीचड़ है. गाड़ियां जरूर फंसती होंगी. तुम लोग रात-दिन यही काम करो तो काफी कमा सकते हो."

"दिन में तो ठीक है साहब, पर रात को हम यह नहीं कर सकते, क्योंकि उस समय हमें यहां कीचड़ बनाये रखने के लिए पानी ढोना होता है."

▣

एक महिला तलाक के मुकद्दमे के दौरा[न] गवाही में कह रही थी, "जज साह[ब] मेरे पति को घुड़दौड़ के अलावा क[भी] किसी बात का ध्यान ही नहीं रहत[ा] जब भी बात करते हैं, घुड़दौड़ बीच [में] आ जाती है. आप खुद ही सोचि[ए] कि ऐसे आदमी के साथ गुजा[रा] कैसे हो सकता है, जिसे विवाह [की] तारीख तक याद नहीं रहती."

"यह बात गलत है जज साह[ब] मुझे याद है, हमारी शादी उसी दि[न] हुई थी, जिस दिन सिलवर हैड ने चौ[थे] महीने के पहले शनिवार को तीस[री] दौड़ जीती थी!" पति ने सफाई दी.

▣

सिनेमा देखते हुए एक महिला हीरोइ[न] के दुख देखकर आंसू बहा रही थी. प[ति] को यह अच्छा नहीं लग रहा था. आखि[र] वह कह ही उठा, "एक ऐसी महि[ला] के झूठे रोने पर क्यों रो रही हो, जि[से] तुम जानती तक नहीं?"

"और तुम क्यों क्रिकेट की कमेंट[्री] सुनते हुए सिर्फ यह सुनकर [कि] एक व्यक्ति ने छक्का लगा दिया [है] उछल पड़ते हो, जबकि तुम उसे जान[ते] तक नहीं?"

एक सुनी सुनायी भी

एक मुशायरे में फिराक के बाद श्रोताओं की तरफ से एक नौजवान शायर जबेर रिज़वी का कलाम सुनने की फरमाइश की गयी.

मुशायरे के सेक्रेटरी ने जबेर को माइक पर बुलाया तो वह बहुत याचना से झिझकते हुए कहने लगे, "श्रीमान, फिराक साहब के बाद मैं अपने शेर कैसे पढ़ सकता हूं."

फिराक साहब ने यह सुनकर बड़ी उदारता से फरमाया, "वाह मियां, तुम अगर मेरे बाद पैदा हो सकते हो तो मेरे बाद शेर क्यों नहीं पढ़ सकते!"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एक नया नाम

एक शाम की कहानी

• मोहन डिमरी

ढ़ने की काफी कोशिश करने पर भी मैं आज मन लगाकर नहीं पढ़ पा रहा था. एक-दो वाक्य ध्यान से पढ़ने के बाद ता ही नहीं चलता कि कब मैंने पूरा पैराग्राफ पढ़ लिया है. जब चानक होश-सा आता तो मन लगाकर पढ़ने का निश्चय करके र आरंभ से ही पढ़ने लगता. मस्तिष्क को केंद्रित करने के प्रयत्न ऊंचे स्वर में भी पढ़ता, लेकिन जब थोड़ी देर बाद पाता कि ला भी वही है और आंखें भी उसी पैराग्राफ पर टिकी हैं, पर स्तिष्क फिर से भटक गया है, तो बड़ी झुंझलहलाहट होती—ब इसकी पुनरावृत्ति पांच-छह बार हो गयी तो मैंने गुस्से से ताब बंदकर अटैची पर फेंक दी और आंखें बंद करके लेट गया.

वीरू और उसका बाप, दोनों ही बारी-बारी से मेरी आंखों सामने आने लगे. खीसें निपोरता बीरू अदृश्य होता तो बुझी-झी आंखों से कहीं दूर तक देखने का प्रयत्न करता हुआ उसका प आंखों के सामने आ जाता. असल में इस बुढ़ऊ ने ही कल से झे परेशान कर रखा है. पीछा ही नहीं छोड़ता. दफ्तर में काम रते समय भी जब-तब अपनी बुझी-बुझी आंखें मुझ पर टिकाये ामने आ जाता. पता नहीं क्यों?...मैंने तो अब यह विचार बना या है कि किसी दूसरे आदमी के दुःखों के बारे में सोच-सोचकर रेशान होना बिल्कुल ही मूर्खता है. किस्मत के मारे और दुनिया सताये ऐसे तो लाखों और करोड़ों की संख्या में होंगे. किस-िस के बारे में सोचें. हमी को कौन-सी जागीर मिली है, हम भी तो रेशान हैं. जिंदगी ऐसे ही चलती है. अपने बारे में सोच लें, यही हुत है.....फिर.....

....फिर भी न जाने मैं कल से क्यों इतना संवेदनशील हो ठा हूं....कल की ही तो बात है. मैंने शाम को घूमने के इरादे से कपड़े बदले. लेकिन बाहर निकला तो देखा आकाश में बादलों के बड़े-बड़े टुकड़े इधर-उधर चले जा रहे हैं और हवा चलने लगी थी. अंधड़ आने की आशंका से मैं तिलिस्मी मौसम को कोसता हुआ कमरे में चला आया. यहां अक्सर ही ऐसा हो जाता है—दिनभर खिली-खिली धूप और शाम को धूल उड़ाता भयंकर अंधड़. कमरे में आकर मैंने रजाई का गावतकिया बनाया और उस पर पसर गया. फिर पेटी को पांवों से ही समीप खींचकर उस पर अपने पांव टिका दिये. यह पेटी भी बड़े काम की है—पेटी है लिहाजा उसमें सामान भी रखता हूं. दोस्त लोग आते हैं तो आवश्यकतानुसार इससे मेज अथवा कुर्सी का काम भी लिया जाता है. हालांकि कुर्सी का काम लेने में अक्सर चारपाई के टूटने का भय भी काम करता है. पसरे-पसरे ही मैं एक पत्रिका निकालकर उलट-पुलट ही रहा था कि दरवाजे पर किसी के कमरे के अंदर झांकते सिर की एक झलक दिखाई दी. मैं अपना संदेह मिटाने के उद्देश्य से दरवाजे के पास गया तो देखा, वहां पर एक बुढ़ऊ खड़ा था. मुझे देखते ही वह मूठवाली छड़ी टेकता हुआ अंदर चला आया.

"कहिए?" मैंने उससे पूछा. दिमाग पर काफी जोर डालने के बाद भी मैं उसे नहीं पहचान पाया था.

"यहां बीरू भी आया है?" कमरे में इधर-उधर देखते हुए उसने पूछा, मानों मैंने बीरू को कमरे में छिपा रखा हो.

बीरू?—अच्छा तो ये बीरू का बाप होगा—प्राइमरी का रिटायर्ड मास्टर. मैं गौर से उसके चेहरे को देखने लगा...दंत-विहीन पोपला मुंह, गाल की दोनों चमड़ियां एक-दूसरे का स्पर्श करने को आतुर और कहीं गहरे से झांक रही बुझी-बुझी दो अदद आंखें. "अच्छा तो आप बीरू के पिताजी हैं? बैठिए." मैंने चारपाई

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

से रजाई एक तरफ हटाते हुए कहा. बुढ़ऊ चारपाई पर बैठा तो मैं भी पेटी को एक कोने में सरकाकर उस पर बैठ गया. "बीरू तो यहां नहीं आया. वह तो मुझे पंद्रह-बीस दिनों से मिला ही नहीं." मैंने जमीन पर गिर गयी बुढ़ऊ की छड़ी को दीवार के सहारे खड़ा कर दिया.

▣

"मुझे बाजार में मिला था तो उसने थोड़ी देर बाद आपके कमरे में मिलने को कहा था. बाहर हवा चल रही थी. इसलिए मैं सीधे आपके कमरे में ही चला आया." बुढ़ऊ ने नजरें चुरा लीं, शायद मेरा अपने चेहरे को घूरते रहना वह बर्दाश्त नहीं कर पाया.

"ठीक किया आपने. घर से कब आये आप?"

"आज ही आया."

"पेंशन लेने आये होंगे." मैंने अनुमान लगाया.

"नहीं, पेंशन तो मनीऑर्डर से चली आती है. इक्कीस रुपये तो कुल मिलते हैं, अगर उसे लेने हर महीने यहां आना पड़े तो ऊपर से कुछ अपना ही खर्च करके खाली जेब वापस जाना पड़ेगा." बुढ़ऊ हंसा.

मैं भी हंसा. "हां, बात सही है. अच्छा तो आप किसी और काम से आये होंगे." मैंने तनिक रुककर पूछा.

"हां, कुछ ऐसा ही." बुढ़ऊ एक निःश्वास भरकर खिड़की से बाहर झांकने लगा था. "वो समन आया था. पिछले समन तो तामील नहीं हो सके, क्योंकि वह गांव में नहीं था. इस समय उन्होंने लिखा है कि यदि इस बार भी हाजिर नहीं हुए तो एकतरफा फैसला दे दिया जायेगा."

बुढ़ऊ एक ही सांस में यह सब बोल गया, जैसे पहले से ही रट के आया हो.

"समन? किसके नाम पर?" मैं कुछ समझ नहीं पाया था.

"अरे साहब इसी बीरू के नाम पर." बुढ़ऊ का स्वर कुछ तिक्त हो आया.

"बीरू के नाम पर!" मैं आश्चर्यचकित था. बीरू की कोई भी बात मुझसे छिपी नहीं थी और फिर बीरू जैसा लाटा आदमी और समन!

"हां, एक्साइजवालों ने पकड़ा था इसे दारू लाते हुए." बुढ़ऊ फिर खिड़की से बाहर झांकने लगा था.

अरे ठीक, ठीक... तब याद आया—बीरू ने एक बार बताया तो था. हुआ यों कि इसके बड़े भाई के पुलिस में होने के कारण पुलिस के सिपाहियों से इसकी जान-पहचान हो गयी थी. एक दिन दो पुलिसवालों ने दारू पीने का प्रोग्राम बनाया. यह उनके यहां आता-जाता तो था ही, उन्होंने इसे भी उस प्रोग्राम में शामिल कर लिया. जब ये लोग वापिस आ रहे थे तो एक्साइज वालों का छापा पड़ा. इन लोगों द्वारा लायी जा रही दारू की बोतल छीन ली गयी. लेकिन...

"लेकिन ये तो बता रहा था कि पुलिसवालों के कारण मामला दबा दिया गया था." मेरे स्वर से अनजाने ही परेशानी झलकने लगी थी.

"अजी कहां? इसके खिलाफ ऐसा मामला बन गया है कि ये हमेशा ही दारू लाता है और उसकी अवैध बिक्री करता है."

बुढ़ऊ ने दोनों तर्जनियों की नोकों को दो-तीन बार छुआकर समझाया.

"हद है!" मुझे गुस्सा आ गया था. ..."बताइए, क्या जरूरत थी उसे उन पुलिसवालों के साथ जाने की! ऐसा अक्ल का अंधा और गांठ का पूरा आदमी मैंने कहीं नहीं देखा." लेकिन मैंने महसूस किया कि बीरू मेरे गुस्से का निशाना नहीं था.

'अक्ल का अंधा और गांठ का पूरा' वाली उक्ति से मुझे बीरू के बारे में एक बात और याद हो आयी. बात तब की है जब यह करीब चार साल पहले हमारे दफ्तर के चौकीदार के छुट्टी पर जाने के फलस्वरूप दो महीने के लिए लगा था. मेरा इससे पहला परिचय उसी समय हुआ.

सत्रह-अट्ठारह साल का गोरा-चिट्टा, शर्मीला, अपने में ही खोया हुआ और आंखें मूंदकर आदेशों का पालन करने वाला... दो महीने बाद जब वह वहां से चला गया तो पता चला कि कैंटीन में इसका चाय-बिस्कुट का हिसाब एक सौ बीस -एक सौ तीस रुपये महीने का था. तब नेगी ने कहा था, "स्साले करेंगे चपरासीगीरी और चाय पियेंगे डेढ़-डेढ़ सौ रुपये की. यही तो कंगाली की निशानी है... भाई साहब, इसीलिए तो इधर का आदमी उन्नति नहीं कर सकता." तभी थपलियाल ने दूसरा भेद खोला, "अरे कहां यार, वो खुद पीता तब भी बात थी. ये सब खर्च तो उसने अपने दोस्तों पर किया यार. कुछ स्कूल के लड़के उसके दोस्त थे."

और उसने निर्णय दिया था, "इसी को तो कहते हैं अक्ल का अंधा और गांठ का पूरा. हा-हा-हा!" ...सब हंस पड़े थे.

बुढ़ऊ ने कोट की जेब से बीड़ी का एक तुड़ा-मुड़ा बंडल निकाला, और एक बीड़ी निकालकर जलायी. पहला कश खींचते ही बुढ़ऊ को बड़े जोर की खांसी आयी. खांसते-खांसते बुढ़ऊ का मुख लाल हो गया और आंखों में आंसू भर आये.

▣

इस बीच बातों का सिलसिला टूट चुका था, अतः मैंने ही उसे जोड़ा, "मास्साब, मैं तो इसे यही सलाह देता हूं कि जाकर गांव में चाय-पानी की एक दूकान खोल ले. वहां पर कुछ कर्मचारी भी रहते ही हैं. कामचलाऊ खर्चा निकल आयेगा और वहां रहकर जमीन-जायदाद भी देख लेगा..."

..."नहीं साहब नहीं, ये काम उसके वश का नहीं है. वो क्या, वह तो किसी काम के लायक नहीं है." बुढ़ऊ के स्वर का ठंडापन मुझे कहीं गहरे तक कंपा गया.

"नहीं, मैं इसलिए कह रहा था कि आखिर वह कब तक इस तरह की एक-एक दो-दो महीने वाली नौकरी करता रहेगा. उसकी उमर ज्यादा हो रही है, अब तो कहीं परमानेंट ठिकाना हो जाना चाहिए." अपनी सफाई देने के बाद मैं तनिक रुका. "एक तो इसकी किस्मत ही ऐसी है और फिर ये एक जगह पर मन लगाकर काम करता ही नहीं."

"बड़ी ही चंचल बुद्धि का है." बुढ़ऊ के होंठ मुड़ने के बाद उसका पोपला मुंह अजीब-सा दिखाई दिया.

मैंने बात आगे बढ़ायी, "मैंने एक साहब के यहां उसे ल

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

था, वहां भी उसने छोड़ दिया. खैर वहां तो उन्होंने उसे काफी परेशान भी किया. फिर इसको एक जान-पहचान वाले ओवर-सियर के गैंग में दिनवारी में लगवाया. ओवरसियर से मैंने कह दिया था कि यार अपना आदमी है, जरा मजदूरी में खयाल करना. उसने वहां भी छोड़ दिया. बिस्कुट वाले के यहां लगा तो दो महीने बाद वहां भी छोड़ दिया. . . और अब जहां लगा है वहां लगा ही सिर्फ दो महीने के लिए है.''

मेरे पूरे भाषण के दौरान बुढ़ऊ के चेहरे पर एक निर्लिप्तता विराजमान रही. शायद बुढ़ऊ को सब मालूम था जिसे दुबारा सुनने में उसे कोई दिलचस्पी नहीं थी.

मैं फिर अपनी पुरानी बात पर लौट आया, ''इसलिए मेरा विचार है कि गांव में दूकान खोलना ही इसके लिए ठीक रहेगा. वहां पर आपके कंट्रोल में भगवान चाहेगा तो ये सब काम ठीक-ठाक कर लेगा. फिर आपका एक लड़का तो नौकरी पर है, उसे तो बाहर ही रहना है. जमीन-जायदाद की देखभाल करने के लिए भी तो कोई चाहिए ही. मैं बुढ़ऊ की प्रतिक्रिया जानने के लिए चुप हो गया.

बुढ़ऊ ने एक निःश्वास भरी, ''अजी साहब, यह जो होता तो मुझे इस बुढ़ापे में रोने की जरूरत ही क्या थी! बड़ा लड़का तो हाथ से गया. अब तो उसको अलग रखकर ही सारी समस्या पर सोचना है. . . दो साल पहले वह अपनी बहू को लेकर जो गया तो आज तक घर आना या पैसे-पाई की मदद करना तो दूर, उसने चिट्ठी तक नहीं दी. उसे तो अब यह जानने की भी जरूरत नहीं है कि हम लोग जिंदा भी हैं या नहीं.''

बुढ़ऊ का रुआंसा स्वर बड़ी गहराई तक मुझे छेदता चला गया. मैं अपने पास कुछ भी कहने के लिए नहीं पा रहा था.

बुढ़ऊ ने अपनी बात जारी रखी, ''पंडीजी, मुझे दुःख इस बात का है कि मेरी नौकरी नासमझ बच्चों को जिंदगी का सही रास्ता बताने की थी. इसी में मेरी सारी उमर गुजर गयी. लेकिन अफसोस कि मैं अपने ही बच्चों को सही रास्ता नहीं बता सका . . चलो बड़ा एकदम अच्छी हालत में तो नहीं है, पर एकदम बुरी हालत में भी नहीं. पर इस बीरू का क्या होगा, यही मैं दिन-रात सोचता रहता हूं और शायद सोचते-सोचते ही मर भी जाऊंगा.'' बुढ़ऊ की नाक बहने लगी थी और मुझे एक घुटन-सी महसूस होने लगी. . .रह-रहकर कोई चीज गले में अटक जाती थी.

''लेकिन मास्साब, ऐसी बात भी नहीं है. आपने अपनी तरफ से कोई कमी थोड़े ही की होगी. लड़के ऐसे ही निकले तो इसमें आपका क्या दोष!'' लेकिन बुढ़ऊ के चेहरे पर मेरी इस सांत्वना की कोई भी प्रतिक्रिया नहीं झलकी. मैं कहना चाह रहा था कि समय कटते कोई देर नहीं लगती. चार-पांच साल उस बीरू ने ऐसे ही काट दिये, क्या पता चला? ऐसे ही बाकी जिंदगी भी कट जायेगी. लेकिन कह नहीं सका. समय काटने की बात से मुझे उसके इस कस्बे में आने से पहले की अवधि की बात न जाने क्यों याद आ गयी. जब वह पिछले वर्ष इस गोपेश्वर में आया था तो उसका सिर घुटा हुआ था. पूछने पर उसने बताया कि वह ऋषिकेश में कुछ दिन अपने एक परिचित के साथ, जो एक आश्रम में खाने-पीने का बंदोबस्त करता था, उसके आश्रम में गया. इसने भी ऐसी ही

◘ मोहन डिमरी
जन्म : 5 जनवरी, 1952
शिक्षा : एम. ए. (अंग्रेजी)
'गुलामी का दौर नहीं देखा है, मगर भारत के आम आदमी को पिछले कितने ही वर्षों से देख रहा हूं जो न हंस सकता है और न रो सकता है. इस विवशता को वाणी देना चाहता हूं, क्योंकि यह विवशता अब असह्य होने लगी है.'

नौकरी मिलने की इच्छा प्रकट की. परिचित ने सोदाहरण इसे यह समझाने की कोशिश की कि यहां नौकरी करने से अधिक ठाठ जोगी होने में है. बात इसके मन में कुछ इस तरह बैठी कि यह दूसरे दिन ही जोगी हो गया. दो-तीन महीने पश्चात यह एक दूसरे नये बने जोगी के साथ भ्रमण के लिए चल पड़ा. ये जब उत्तर-काशी में थे तो दूसरे जोगी का पीछा करती उसकी रोती-कलपती मां वहां आ पहुंची और मना-बुझाकर अपने लड़के को वापिस घर ले गयी. इसको लेने तो कोई नहीं गया, पर अकेले में मन न लगने से उसने भी भगुवे कपड़े फेंक दिये और यहां चला आया.''

बुढ़ऊ मेरे सांत्वना-शब्दों को अनसुना कर अपनी ही रौ में बोलने लगा था, ''अरे इतना भाग्यहीन भी मैंने कोई नहीं देखा. क्या नहीं है? पुलिस में भरती हो जाता, पल्टन में भरती हो जाता या जहां लग रहा है, वहीं पक्का हो जाता, और तो और जोगी हो जाने के बाद भी वापिस ही आया. . .कम से कम इसी में संतोष कर लेता कि मेरा एक ही लड़का है और वह नौकरी से अपना गुजारा कर ही रहा है. . .

तभी बीरू ने कमरे में झांका, ''आइए बीरेंद्र प्रसादजी.'' मैंने उसे अंदर बुलाया. बुढ़ऊ ने एक निरपेक्ष दृष्टि उस पर डाली. वह रोज की तरह खींसे निपोरता हुआ जमीन पे बिछी बोरी पर बैठ गया.

''क्यों रे, उस बिस्कुट वाले ने तेरा हिसाब कर दिया?''. . . बुढ़ऊ ने भरसक तोप दागने का प्रयत्न किया.

''नहीं.''

''तो क्यों नहीं किया. मैंने तुझसे कहा था कि तू उसके बिक्री के पैसे तब तक वापिस मत लौटाना, जब तक वह तेरा हिसाब न कर दे. मैं अभी उसके पास गया था, उसने तो बताया कि तेरे ऊपर उसका ढाई सौ रुपये का हिसाब बाकी है. . . मैं क्या करता! भैंस की तरह मोटा होता जा रहा है और उसके ठगने में आ गया? नालायक कहीं का''. . . बाकी आवाज बुढ़ऊ की खांसी में दब गयी. . . और मैं सोच रहा था, जब यह बुढ़ऊ मास्टर होगा तो बड़ा कड़े मिजाज का होगा. बुढ़ऊ की खांसी तो बंद हो गयी थी, लेकिन वह अभी तक हांफ रहा था.

मैंने बीरू से चाय बनाने को कहा. स्टोव की घरघराहट के कारण सभी चुपचाप थे. मैं बुढ़ऊ के विचारमग्न चेहरे पर उसके अतीत को खोजने लगा. कितने अरमान रहे होंगे उसके दिल में. . . अपने बारे में. . . लड़कों के बारे में. . . लेकिन अपने अरमानों को

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ग़ज़लें

एक

ज़िंदगी पर किसी साये का गुमां होता है,
जैसे मिटता हुआ धुंधला-सा निशां होता है.

ज़िंदा रहने का सलीक़ा तो उसे आता है,
मौत की गोद में पलकर जो जवां होता है.

वक़्त की धुंध में खोया हुआ तेरा चेहरा,
जैसे बुझती हुई यादों का धुआं होता है.

तेरी ज़ुल्फ़ों का बहुत नाम सुना करते हैं,
इसका साया भी है लेकिन वो कहां होता है.

कुछ न कुछ उनसे तअल्लुक़ तो अभी बाक़ी है,
चोट लगती है वहां, दर्द यहां होता है.

▣ ज़ाफ़र बेग

दो

ज़ख़्मों से भरा दिल का चमन बेच रहा हूं.
ये गीत, ये नग़मात, ये फ़न बेच रहा हूं.

जिस अज़्म से दुनिया को एक आईना मिलेगा,
वोह बोझ उठाने को थकन बेच रहा हूं.

क्या मोल है लोगो, मुझे इतना तो बता दो,
नादार हूं, मैं अपना कफ़न बेच रहा हूं.

है कोई हक़ीक़त का ख़रीदार तो आये,
मैं आज सरे-दार घुटन बेच रहा हूं.

किस क़ौम ने मुफ़लिस को कलेजे से लगाया,
नश्तर है जो दिल को वो चुभन बेच रहा हूं.

जब प्यार नहीं दिल में तो बेकार है जीना,
इंसान हूं, गीता का वचन बेच रहा हूं.

इस दौर का भगवान भी सोया है महल में,
फुटपाथ पे ग़ुरबत के भजन बेच रहा हूं.

▣ संतोष कुमार गौड़

पूरा न होते देख यह कितना दुःख सह रहा होगा, यह मैं सिर्फ दिल में महसूस कर सकता हूं, अभिव्यक्त करने की क्षमता मुझमें नहीं है.

चाय पीने के बाद वे दोनों चले गये थे और मुझे सौंप गये अनिद्रा रोग. . .

आज शाम भी बीरू आया था.

"हो गया तुम्हारा फ़ैसला?" मैंने पूछा.

"हां." वह बाकायदा अपनी खीसें निपोरता चला जा रहा था.

"क्या हुआ?"

"जुर्माना. . . ढाई सौ रुपये."

"ये ढाई सौ रुपये कहां से दोगे? हैं तुम्हारे पास?"

"नहीं साब, पिताजी देंगे."

"मेरा मन अजीब-सा हो आया था. . ."

"तो क्या तुमने अपनी सफाई में कुछ कहा ही नहीं." मैं झुंझलाया.

"कहा था साब, पर उन्होंने कहा कि दारू तो तुम्हारे पास पकड़ी गयी है, पुलिस वालों को हम क्या जाने!"

मैंने एक निःश्वास भरा. अचानक मुझे समन वाली एकतरफा फ़ैसले की बात याद आयी, तो मन में कुछ अजीब-सा महसूस होने लगा. उसने आगे कहा, "वकील ने भी कहा कि मुकदमा लड़ने से कोई फायदा नहीं है. . . मुकदमा लंबा खिंचता चला जायेगा और उसमें बहुत पैसा बर्बाद हो जायेगा."

"ठीक ही कहा वकील ने भी." मैं मन ही मन बुदबुदाया.

वह चला गया था.

▣

. . . और मेरी आंखों के सामने बारी-बारी से ये दोनों चेहरे आते चले जा रहे हैं. . . जब बीरू यहां आया था तो मैंने ही उसकी मदद की थी, लेकिन कुछ समय बाद मैं उसकी ओर से विरक्त सा हो गया था.

कहां तक हम किसी के बारे में सोचें, और भी तो हैं दुनिया में. . .दोस्तों के बीच मेरे लिए वह मजाक का विषय था, मसलन उसका जोगी बनने का किस्सा, उसके चाय-बिस्कुट का खर्चा—इन किस्सों को मैं नमक-मिर्च लगाकर पेश करके दोस्तों को अधिक से अधिक हंसाने का प्रयत्न करता. . . लेकिन आज लग रहा है, मेरा दिल बुढ़ऊ का दिल हो गया गया है और आंखें भी बुढ़ऊ की. . . इन बदलती हुई आंखों से जब मैं बीरू की तरफ देखता हूं तो ये बुढ़ऊ वाला दिल एक अव्यक्त पीड़ा से कराह उठता है. . .

ओह, लगता है आज नींद आयेगी ही नहीं. . . सारा गोपेश्वर नींद के आगोश में निश्चल पड़ा है. इस निश्चलता में कभी चौकीदार की सीटी की आवाज तैर जाती, कभी-कभी कुत्ते भी भौंक उठते. . .

मैंने करवट बदली और सोने के प्रयास में रजाई सिर तक ओढ़ ली.

● कार्यालय जिला विद्यालय निरीक्षक, चमोली,
गोपेश्वर-246401 (उत्तर प्रदेश)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शिवसागर मिश्र के दो उपन्यास ▣ डा. वचनदेव कुमार

बदलते परिवेश में मूल्यों के ध्वंस का विस्फोट समसामयिक हिंदी उपन्यासों के लिए पटाखे की आवाज भर नहीं रह गया है, अपितु मूल्य-विघटन और नव्य जीवन-मूल्यों के आरोहण की मौजूदा प्रक्रिया में इधर के कथाकारों की खासी दिलचस्पी है. भविष्य से अनभिज्ञ वर्तमान संकट को मूल्यों के संदर्भ में उद्घाटित करने वाले उपन्यासों के बीच 'जनमेजय बचो' की अस्मिता इसी कारण स्थिर है कि वास्तविकता के जीवित और विश्वसनीय संसार को चिंतन और अनुभव, संवेदना और अभिव्यक्ति के धरातल पर साकार करने की क्षमता शिवसागर मिश्र में है. 'जनमेजय बचो' कथानक लक्ष्मीकांत के जीवन का इस निचोड़ की औपन्यासिक व्याख्या है कि हमारे देश में अब तक कोई क्रांति नहीं हुई, देश जहां का तहां है.

ऋषियों की रिश्तेदारी सर्प से है

स्वाधीनता संग्राम के दिनों से लेकर आज तक के सामाजिक-राजनीतिक परिदृश्य का रेखांकन इसी पीठिका पर शिवसागर मिश्र ने इस उपन्यास में किया है. यह केवल सुगिया और जनकिया की दुखभरी कहानी ही नहीं, लक्ष्मीकांत की जीवनयात्रा का मूल्यदर्शक प्रतिरूप ही नहीं, रेतिया कोठी को केंद्र बनाकर लिखी गयी शोषक बनाम शोषित के सनातन संघर्ष की गाथा भी है. इस गाथा में नारी-शोषण की सिसकियां और निम्नवर्गीय स्थितियों की मजबूरियां उद्घाटित हुई हैं. यह गाथा कहीं बलात्कार और भ्रष्टाचार की कुंजगलियों से गुजरती हुई राजनीति के अखाड़े तक पहुंचती है तो कहीं इसके बीच में व्यवस्था को चरागाह की तरह इस्तेमाल करने वालों की वास्तविकता उजागर हुई है.

'जनमेजय बचो' में एकत्र लोग समस्याओं और संघर्षों के बीच विकसित हुए हैं. उनके बीच न कोई मसीहा है और न कोई क्रांतिदर्शी. लक्ष्मीकांत की कथा कहां सुगिया की व्यथा बन गयी है और जनकिया की चिंता कहां आनंद का साहस बन गयी है, घटनाओं के इस विस्तृत ताने-बाने में औपन्यासिक वस्तु का विकास उपन्यासकार ने रोचक शैली में किया है.

हर सिंहासन के नीचे तक्षक !

लक्ष्मीकांत की आत्मकथा के बाद लेखक को डायरी और पत्रों का जो पुलिंदा आनंद ने दिया, वही 'जनमेजय बचो' का कथा-स्रोत है. उपन्यास को विश्वसनीय बनाने की इस औपचारिक कोशिश के बिना भी शिवसागर मिश्र के इस उपन्यास में पाठक को सामाजिक-राजनीतिक यथार्थ के संकटपूर्ण संसार में भटकाने की पर्याप्त सामग्री थी. 'जनमेजय बचो' का विकास एक चुके हुए सामंत और नेता की कथा से हुआ है और इसका पर्यवसान परिवेश की विविध विसंगतियों और असुरक्षाओं की चिंता में मौजूद है. **उपन्यास के अंत में कथाकार ने गांधीजी के उस स्वराज्य की परिकल्पना की है, जब सोलह साल की लड़की कश्मीर से अकेली चलकर कन्याकुमारी सकुशल पहुंच जायेगी.** जिस वातावरण में सुगिया और जनकिया को जगदंबी, नत्था सिंह, रबिया, सरयू मिसिर जैसे लोगों की पाशविक लोलुपता से बचने के लिए लगातार संकट का सामना करना पड़ता है, उसमें असुरक्षा की भावना ही सामाजिकता का केंद्रीय स्वर है. आनंद और सुगिया, कन्हैया और जनकिया के बहाने उपन्यासकार ने मन की कोमलता का गहरा ज्वार दिग्दर्शित किया है, लेकिन घटनाओं के घुमावदार रास्तों से गुजरती हुई यह कथा न इन प्रेमिल प्रसंगों पर टिकी है और न उन उत्तेजक वर्णनों पर ही आधृत है, जिनमें शिवसागर मिश्र ने पर्याप्त रुचि ली है. बलात्कार और सौंदर्य पिपासा के प्रसंगों में उपन्यासकार ने एक नये अंदाज में वर्णन का वैभव दिखलाया है. ऐसे प्रसंगों की चटुल रंगाभेजी में 'जनमेजय बचो' का रचनात्मक संकल्प नहीं छिपा है; और न सुगिया को सुधा के रूप में रेतिया कोठी की बहू बना देना ही उपन्यास का चरमोत्कर्ष है. उपन्यास की आत्मा उन बहुत सारे अनुत्तरित प्रश्नों में निहित है, जो घटनाओं की पारस्परिक टकराहट और समाज के उपेक्षित पात्रों के प्रति उड़ेली गयी सहृदयता के कारण आविर्भूत हुई है. कहीं उपन्यासकार ने परिवेश की प्रतिक्रियात्मक अनुभूतियों के बहाने अपने पात्रों के अंतर्लोक की यात्रा की है और कहीं इस यात्रा को दुर्गम बनाने वाले कांटों और रोड़ों का विस्तृत उल्लेख किया है. उपन्यास के अंत में शिवसागर मिश्र का मूल्यचिंतक स्वरूप प्रकट हुआ है—

हर सिंहासन के नीचे तक्षक लिपटा है. ऋषियों की रिश्तेदारी सर्प से है. इसका इलाज संघर्ष या आंदोलन नहीं, इलाज है जनक्रांति, मान्यताओं और मूल्यों की क्रांति. जब तक सामंती परंपरा का इंद्र सिंहासन पर बैठा रहेगा, तब तक तक्षक का वंश फलता-फूलता रहेगा और 34 करोड़ नहीं, इससे भी अधिक संख्या में भारतवासी भूख, बेकारी और बीमारी के दंश से मरते रहेंगे. रोकना होगा आस्तीक को, जो ऋषिपुत्र होकर भी यज्ञ में बाधा डाल देता है. जनमेजय की आंखों में उंगलियां डालकर उसे समझाना होगा कि यदि पितृकुल का ऋण चुकाना चाहते हो तो सर्प-सत्र चलने दो और जब तक 'तक्षकाय स्वाहा' न हो जाये, तब तक 'इंद्राय स्वाहा' कहकर आहुति डालते रहो!

भ्रष्टाचार की राजनीति

समूचा उपन्यास इसी रूपक का पल्लवन है. प्रारंभ से अंत तक जनमेजयों को तक्षकों और इंद्रों से बचने के लिए अपनी राह बनाने का निर्देश कथाकार ने दिया है. सत्ता की राजनीति और भ्रष्टाचार की रणनीति को

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मूर्त करने के लिए उसने पौराणिक मिथ का सप्रयोजन उपयोग किया है.

आनंद को प्रारंभ से अंत तक अपनी मानवतावादी दृष्टि के लिए लज्जित अंकित किया गया है. असंतोष और विवशता का यह आचरण वर्तमान परिवेश में आनंदों की लाचारगी का लेखा-जोखा है. आनंद और सुधा का अंतर्जातीय विवाह आदर्शवाद का उदात्त शिखर है तो जनकिया के साथ थाने में हुआ बलात्कार यथार्थ की तस्वीर है. मूल्य संदर्भों की तलाश करनेवाले कथाकार ने आनंद और सुधा के आदर्श विवाह से उपन्यास की समाप्ति नहीं की है, अपितु उपन्यास का अंत होता है लक्ष्मीकांत की आत्महत्या से. लेखक ने लक्ष्मीकांत की आत्महत्या, आनन्द के तबादले, कन्हैया के डाकू बनने, जनकिया की तबाही के साहस के लिए उस परिवेश को प्रश्नों में खड़ा कर दिया है, जिसमें प्रश्नों का समाधान नहीं खोजा जा रहा है. 'जनमेजय बचो' आद्यंत एक क्रांतिकारी मूल्यमुखी रचना है, जिसमें पीढ़ियों के अंतराल, वर्जनाओं के बंधन, व्यवस्था की मर्यादा और मनुष्य द्वारा मनुष्य के शोषित होते जाने की नियति की अभिव्यक्ति कथाकार ने की है. यह उपन्यास सामाजिक बदलाव में लेखक की भूमिका को रेखांकित करनेवाली सर्जना का रचनात्मक प्रस्थान है, कथाफलक की विसंगमूलक संरचना से निखरी हुई और परिवेश की वास्तविकताओं के दर्पण के रूप में उभरती हुई रचनाधर्मिता का सजग आख्यान. ▣

वह जो अभी जन्म लेगा!

'जनमेजय बचो' में जहां शिवसागर मिश्र मूल्य चिंतक की भूमिका में दिखाई पड़ते हैं, वहां 'अजन्मा वह' में चरित्रकल्पक के रूप में. इस उपन्यास का संपूर्ण रचना-विधान जिस विशिष्ट पात्र की चरित्रभित्ति पर निर्मित है, वह सिद्धार्थ विज्ञान और अध्यात्म का सेतुबंध है, आचार और विचार का तीर्थस्थल है, कथनी और करनी का संगम है, सेवा और त्याग का साकार उद्गम है. समूचे उपन्यास को सिद्धार्थ की धीरोदात्त चरित्र-सृष्टि का वाहक बनाने के क्रम में शिवसागर मिश्र ने 'अजन्मा वह' को कल्पना और यथार्थ, मोह और त्याग, सिद्धांत और व्यवहार की अनेकानेक धाराओं से सींचा है. यह उपन्यास बिहार के पूर्वी कोशी अंचल से हिमालय प्रदेश की शिवालिक घाटियों तक विस्तृत कथाफलक में उपलब्ध पात्रों के विशाल मेले द्वारा सामाजिक और दार्शनिक बोध की घाटियों से गुजरने का अवसर प्रदान करता है.

काल्पनिक नायक की भूमिका

सिद्धार्थ के रूप में शिवसागर मिश्र ने एक असामान्य एवं अप्रतिम क्षमता-संपन्न पुरुष की परिकल्पना की है, जो अपने आचरण के दर्पण में 'अजन्मा वह' की आयोजना को साकार करता है. उसके व्यक्तित्व में चिंतन और समाजशास्त्रीय दृष्टि का विलक्षण समन्वय है. उपन्यास के प्रारंभ से अंत तक एक ऐसे 'सुपरमैन' के रूप में उसकी मूर्ति उभरी है कि उसकी विराटमूर्ति के सामने आद्यंत अविश्वसनीय आवरण पड़ा रहता है. **भूमिका में शिवसागर मिश्र ने स्वीकार भी किया है कि उनका नितांत काल्पनिक कथानायक सिद्धार्थ, संभवतः पाठक को विश्वसनीय नहीं लगे—मैं नहीं जानता कि सिद्धार्थ किस हद तक यथार्थ की भूमि पर खड़ा है और किस हद तक वह एक आदर्श है. मैं यह भी नहीं कह सकता कि वह किसी पाठक को झकझोर पायेगा अथवा नहीं.**

उपन्यास में आये विभिन्न पात्रों ने भी सिद्धार्थ को अविश्वसनीय दिव्य-पुरुष के रूप में ग्रहण किया है. समूचे उपन्यास में सिद्धार्थ के बारे में अभिव्यक्त उद्गारों में उसकी देवोपम छवि उभरी है. उषा को लगा—**सिद्धार्थ इस धरती का प्राणी नहीं है. इस घोर उपयोगितावादी युग में ऐसे परमार्थी, संवेदनशील और सशक्त किशोर का जन्म महज कल्पना की चीज है.**

बिल्टू दुसाध को लगा, जैसे भगवान धरती पर उतर आये हैं और तेजपाल को वह आधुनिक युग का आदर्श कर्मयोगी पुरुष प्रतीत होता है. केशव को वह आदमी नहीं, एक सिद्धांत नजर आता है और सुक्खो ने उसे राम, कृष्ण, हनुमान और अर्जुन के समानांतर पाया है. हिमाचल प्रदेश तराई में रहने वाले कुछ लोगों के लिए एक आदर्श सिद्धपुरुष है तो किसी ने देवता मानकर मन में बैठा लिया अलौकिक, असामान्य, समाधिस्थ अ स्थितप्रज्ञ व्यक्ति के रूप में विख्यात सिद्ध ऐसा होगा, जैसा कभी कोई न हुआ न भविष्य में होगा.

राम-कृष्ण बनाम सिद्धार्थ

श्यामा के रोम-रोम में अलौकि अविस्मरणीय स्पंदन की तरह व्या सिद्धार्थ की महनीयता को उपन्यास ने अविश्वसनीयता के स्तर तक ला दि है. उपन्यास के अंत में बाढ़ से घिरी रेल पर औरतें आरती सजाकर ले आयीं सिद्धार्थ की आरती उतारने लगीं, लो जय-जयकार करने लगे. देवपुरुष की त सिद्धार्थ उपन्यास के प्रारंभ से अंत त अपने परदुखकातर व्यक्तित्व का प्र छोड़ता है. उसकी पूरी जीवनयात्रा मसीहा के रूप में विकसित हुई है. जहां पीड़न-उत्पीड़न है, अनाचार-अत्याचार रोग-शोक है, सतीत्व हरण, अधिकार ह है, वहां सिद्धार्थ अवतार की तरह त्राता मुद्रा में उपस्थित हो जाता है. राम कृष्ण के चरित्र पर भी प्रश्नचिह्न लगा सिद्धार्थ के चरित्र में कोई दाग नहीं जा सकता है. सिद्धार्थ का चरित्र चंदन गंध से सुवासित स्फटिक का विशाल वि है. यह विग्रह विस्मयकारी और नमस् बन गया है, लेकिन ग्राह्य और विश्वस नहीं बन सका है.

अनेक संकटों, विचलन की घड़ियों उत्तेजना भरे प्रसंगों में भी सिद्धार्थ ने अ संयम और चरित्रबल का परिचय दिया पर सिद्धार्थ का एक वाक्य उ शेष छवि से भिन्न स्वाद की प्र देता है—**उनसे कहो, अपने हाथ-पांव जायें. एक-दूसरे को नोचकर खा यही तो कर रहे हैं लोग.** यह सु प्रमोद को महसूस होता है, जैसे दूसरा ही सिद्धार्थ उसके सामने से जा रहा हो. श्यामा को देखते ही की मनःस्थिति सामान्य हो गयी और तन-मन में वही सारे शीतल शुद्ध बहने लगे, जिनके प्रवाह ने 'अजन्मा को उदात्त चारित्रिक-बोध प्रदान कि

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

▣ अभिव्यक्ति के दो छोर

● प्रेम जनमेजय

'चीख के आर-पार' (साहित्य सहकार, कृष्णनगर, दिल्ली-51) ज्योत्स्ना मिलन का पहला कहानी संग्रह है. अभिव्यक्ति के स्तर पर जहां एक ओर 'धड़ बिना चेहरे का', 'चीख के आर-पार' जैसी अस्पष्ट बोझिल, अति सूक्ष्म, मानसिक असंतुलन की कहानियां कथा-संग्रह में हैं, वहीं 'घर' 'अंतराल' 'स्वदेशी' 'सुख' जैसी कहानियां भी हैं, जो अपनी सहज मानसिकता के कारण मन को छू लेती हैं. इनके पात्र संतुलित जीवन जीते हैं, वह कुंठाग्रस्त नहीं अपितु अपनी अभिव्यक्ति को सही रूप में संप्रेषित करते हैं, जबकि पहली कहानियों के पात्र प्रतीकात्मक बोझिलता के कारण संप्रेषित नहीं हो पाते हैं. ज्योत्स्ना मिलन अपने आसपास के परिवेश से जुड़ने को लालायित दृष्टिगत होती हैं. उनमें परिवेशगत समस्याओं को पकड़कर उन्हें अभिव्यक्त करने की क्षमता है. आशा है कि वे हमें 'घर', 'बैठक', 'अंतराल', 'लीली' जैसी कहानियां ही देंगी. □

सिद्धार्थ के पास स्नेह और क्षमा, त्याग र सेवा का अक्षय भंडार है. सिद्धार्थ अपनी विमातृज बहन रेणुका को अग्रज स्नेह दिया है और सौतेले भाई गोपाल उसकी समस्त बुरी आदतों के बावजूद मकान सौंप दिया है. अपनी विमाता ना देवी को जितनी सहजता के साथ क्षमा करता है, उतनी ही सहृदयता साथ उसने अघोरी साधु भोला और नेता माफी दी है. उसका उद्देश्य है—देश के ने-कोने में घूमकर जरूरतमंदों की सेवा ते हुए ऐसे केंद्रों की स्थापना करना, हां वर्तमान व्यवस्था के विरुद्ध लड़ने वाले द्धा तैयार किये जा सकें. पटना के अपने कान के आसपास रहने वाले बच्चों की ठशाला के प्रारंभ से ही किशोर सिद्धार्थ सांस्कृतिक-बोध और नैतिक उदात्तता मंत्र फूकना प्रारंभ किया.

किस चीज की आजादी है?

पने कथानायक के चरित्र-विकास को शिवसागर मिश्र ने सामाजिक यथार्थ की भूमि में औदात्य प्रदान किया है. अनेक लों पर राजनीतिक व्यवस्था, सामाजिक समता आदि पर सिद्धार्थ के बेबाक चार क्रांति की मशाल प्रज्वलित करते हैं. मींदार रामानंद के ज्येष्ठ पुत्र और विपुल पत्ति के स्वामी सिद्धार्थ की चिंता आजादी अवमूल्यन से जुड़ी है—**बेशक, इस देश आजादी है. गरीबों की बहू-बेटियों के थ बलात्कार करने की आजादी, बंधुआ मजदूर रखने की आजादी और पचास सदी आबादी को भूखों मारने की आजादी!** एक अन्य स्थल पर भी सिद्धार्थ ने आजादी के इस खोखलेपन को रेखांकित किया है—**बीस साल की आजादी इन गरीबों के लिए पीने के पानी की व्यवस्था नहीं कर सकी थी.** 'अजन्मा वह' अघोरी साधु भोला में शिवसागर मिश्र ने अपने ही उपन्यास 'राजतिलक' अघोरी वक्रघोष और नेता में पुलिकसेन प्रतिबिंबित किया है. इन दोनों के बहाने सिद्धार्थ ने राजनीतिक सांस्कृतिक परिवेश विरूपताओं पर तीखे प्रहार किये हैं. देश को अधिक गरीब और धनी को अधिक धनी बनाने की व्यवस्था की राजनैतिक साजिश पर सिद्धार्थ ने नेताजी को लंबा प्रवचन पिलाया है—**आप लोग केवल सत्ता और प्रभुता के लिए चुनाव लड़ते आये हैं. सत्ता और प्रभुता की इस लड़ाई में हर प्रदेश में बीस-पच्चीस और केंद्र में चौदह-पंद्रह व्यक्ति ही हमेशा जीतते रहे हैं. वे जिस किसी भी पार्टी के हों, घूम-फिरकर सत्ता और प्रभुता उन्हीं के चरणों में बिछ जाती है. मानवीय मूल्यों की स्थापना की चिंता किसे है? आप लोग जो कुछ करते हैं, उससे मानव-कल्याण हो ही नहीं सकता. आप तो अकल्याण ही करते आ रहे हैं. लोगों को बांटते रहे हैं. . .कभी धर्म के नाम पर, कभी भाषा के नाम पर और कभी पिछड़ी जाति और ऊंची जाति के खोखले नारों के नाम पर.**

जाति का जहर!

जहां कहीं शोषण दिखता है, सिद्धार्थ अपने अपार शौर्य, अलौकिक क्षमता और असीम शक्ति के सहारे उसका सामना करता है. बचपन से ही सिद्धार्थ में परंपरा-भंजन प्रवृत्ति दिखलाई पड़ती है. जिस सामंती व्यवस्था की हवेली असवर्णों और शोषितों के रक्तस्वेद पर खड़ी होती है, उसी हवेली का वारिस सिद्धार्थ, हवेली की मानसिकता के विरुद्ध विद्रोह करता है. जमींदार रामानंद का बेटा शूद्र कैलास के घर जाकर अपनत्व बढ़ाता है, अछूतों के हाथ का खाना खाता है, मेथुरिया दुसाध पर हुए अत्याचार का विरोध करता है और कैलास की बहन शकुंतला पर बुरी नजर डालने वाले अपने ही लोगों का विरोध करता है. उसकी सहानुभूति प्रत्येक मनुष्य के साथ है. उसकी दृष्टि में न कोई ऊंची जाति का है और न कोई निम्न वर्ण का. वर्ण व्यवस्था के बारे में उसकी स्पष्ट मान्यता है—**कभी-कभी मेरी भी इच्छा होती है कि रात के अंधेरे में घूम-घूमकर जाति का नाम रखने वालों को मौत के घाट उतार दूं. इन तमाम अपराधों और पाप की जड़ में मुझे जाति का जहर ही नजर आता है.**

'अजन्मा वह' को शिवसागर मिश्र ने सिद्धार्थ की चरित्र-सृष्टि का माध्यम बनाया है. अपने आदर्श रूप में सिद्धार्थ वास्तविक परिवेश में अब तक प्रकट नहीं हो पाया है, लेकिन उपन्यासकार ने भारतीय और पाश्चात्य जीवन-बोध के समवाय से एक ऐसे विरल पुरुष की रचना की है, जिसके पैर भारत की धरती पर हैं और जिसकी आंखों में आधुनिक ज्ञान-विज्ञान की ज्योति जल रही है. इस चरित्र-कल्पना के क्रम में कथाकार ने एक ऐसे घटनाबहुल कथानक की सृष्टि की है, जिसमें पाठक को बांध रखने की क्षमता है. बड़ी चतुराई के साथ लेखक ने दार्शनिक चिंतन को सामाजिक परिष्कार और यथार्थबोध के साथ गूंथा है. कथानक का प्रारंभ प्रत्यावलोकन शैली का उदाहरण है और कथा विकास की वक्रिमवीथियों की यात्रा करती है.

'अजन्मा वह' की चर्चा हिंदी उपन्यास के इतिहास में इस कारण होती रहेगी कि चरित्रकल्पक कथाकार ने इसमें खुले दिल-दिमाग से पूरब-पश्चिम को देखने का महत्वपूर्ण कार्य किया है. □

चर्चित पुस्तकें

▣ **जजमेंय बचो**

▣ **अजन्मा वह**

● **शिवसागर मिश्र**

प्रभात प्रकाशन, नयी सड़क, दिल्ली-6, मूल्य : क्रमशः 20 रुपये व 30 रुपये.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अगला अंक

नये साल में प्यार की किरणें
आपके जीवन को जगमगायें! ...
अनंत शुभकामनाओं सहित ...
आपके लिए सादर भेंट––

प्रेमकथा विशेषांक

प्रेम के उस इंद्रधनुषी जज्बे के नाम जिसके बिना संसार की उत्पत्ति ही असंभव थी. . .!

तुझको मालूम है क्यों उम्र गवां दी हमने? उम्र और जज्बे को जिंदगी की मासूम धड़कन से जोड़ती जीवंत कहानियां––

● पत्नी की उपेक्षा करके जब आदमी बाजारू होने लगता है तो दाम्पत्य प्रेम पर क्या अनहोनी गुजरती है? पत्नी और वेश्या तथा वेश्या और पत्नी की सीमाएं निर्धारित करके आधुनिक जीवन पर कटाक्ष करती, इंसान के मन में बैठकर लिखने वाले कहानीकार **मोपासां** की नायाब कहानी––**नया अनुबंध**

● "तुम क्यों हंसे?" उसने बाजार की ओर मुड़कर कहा... "यूं ही, लेकिन मैं इधर से नहीं जाऊंगा. मैंने लोगों के पैसे देने हैं..." "फिर क्या हुआ? हम कायर नहीं, उन्हें फेस करेंगे!"...प्रेम के मध्यमवर्गीय फासलों को नये आयाम देती **वीर राजा** की अनुभूतिपरक कहानी –– **बीच का फासला.**

● मैं चाहता था कि वह सिर्फ मुझसे और मुझसे ही जुड़ी रहे किंतु वह थी कि बहुतों से संबंध बनाये रखना चाहती थी. . .और उसका कहना था कि मेरे और उसके संबंध में जो गरिमा है वह किसी अन्य में नहीं. वह प्यार को किसी एक खूंटे से बांधे नहीं रखना चाहती!–संबंधों की आधुनिकता और परिवेशगत संस्कारों को उकेरती **गोविंद मिश्र** की मानसिक द्वंद्व की कहानी––**अलग-अलग समय.**

● उसे पढ़ना था, परीक्षा देनी थी. जिस घर में वह रहता था उस परिवा[र की] हमउम्र लड़की उसे पढ़ने न देती, शरारतें ही करती रहती. उसने घर छो[ड़] जाना चाहा किंतु उसे हॉस्टल रूपी [कैद]खाने में भी नहीं जाने दिया गया. [तब] उसने एक ऐसा इलाज ढूंढा कि लड़की शरमाने लगी. . .सहयोग करने ल[गी.] **शफीकुर्रहमान** की लोटपोट [कर देने वाली] मार्मिक कहानी––**ज्यादती.**

▣ ये न थी हमारी किस्मत !

जवाहर सिंह!––भरतपुर के महाराजा का होनहार राजकुमार!. . .और ग[न्ना] बेगम––फर्रूखाबाद के अहमद खां बंगश के दोस्ती की हूर बेटी, जिसके कहने प[र] जवाहर सिंह उसके प्रेम में पागल हुआ, उसका अपहरण करने जा पहुंचा! गन्ना बेग[म] खुश थी, मगर होनी को कुछ और ही मंजूर था––पिता और पुत्र में टक्कर हु[ई] सलीम-अनारकली से भी कहीं रोमांचक एक अनजानी इतिहास कथा ––**बाला दुबे** की कलम से.

▣ प्रेम कहानियों का निर्वासन किसके कारण ?

अब भी दिलकश है तेरा हुस्न मगर क्या कीजे, और भी गम हैं जमाने में मुहब्बत के सिवा!. . .कथा-साहित्य में प्रेम के निरंतर गायब होते जाने की वजह, एक विचारोत्तेजक परिचर्चा में पूछ रहे हैं **शैवाल** और जवाब दे रहे हैं––आबिद सुरती, मधुकर सिंह, अनिल ठाकुर, अरुण रंजन, हृषीकेश सुलभ और राबिन शा पुष्प.

● दो सपने––एक लड़की का, एक [लड़के] का!. . .नयी उम्र का पहला प्रेम [और] दुनिया से पहले साक्षात्कार का [बेबाक] बयान. . .कि जमाना आखिर बेदर्द क्[यों होता] जा रहा है! एक नया नाम––[...] **अरोड़ा** की कहानी––**दुःस्वप्न.**

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आंखें मंटो ने देखी थीं—वे आंखें मिलकर चार हुई थीं, विश्वासघात फिर दो ही रह गयीं. . .और दो पर बरसों बाद वे उन पुरानी दो को ढूंढने बंबई से लाहौर जा पहुंचीं! और दूरी में नारी मनोविज्ञान की मिसाल—सरताज कथाकार **मंटो** की —**ओ बेवफा!**

कसाई की जिंदगी में एक दिन ऐसा है, जब दूकान पर लटके हुए गोश्त उग आती हैं और पूछती हैं—तुम ही बना सकते हो, जो हम थे . . . ? के प्रेम तथा यौन संबंधों के बाह्य, और आध्यात्मिक संसार को करता टकराव—युवा कथाकार की कहानी—**ज्वार के उस तरफ.**

कल्पना कीजिए कि जिस लड़की प्रेम करते हैं, उस तक पहुंचने के लिए की मम्मी से प्रेम करने लगें. . . को यह पता लग जाये कि आप. . एक लड़की के प्रेम, घृणा और की दास्तान—**दयानंद अनंत** —**माध्यम**

और अगला ही अंक . . .
प्रेमकथा विशेषांक—दो

"मैं इस दुखद एहसास से कभी न उबर सका कि मैं किसी के प्यार के काबिल नहीं हूं. और न ही उस एहसास से कि जब भी किसी प्यार का इजहार होता है, मैं संदेहशील हो जाता हूं और खरे को भी खोटा जैसा समझने लगता हूं. इसमें मेरा ही कुछ खोया है, क्योंकि मैं नहीं जानता कि असली प्यार क्या होता है. . .?"—प्रेम से लेकर पत्र-कारिता और राजनीति तक की यात्रा के बारे में **खुशवंत सिंह** से बातचीत कर रहे हैं—**जनार्दन ठाकुर और से. रा. यात्री**

▣ अगर कोई हमारे पत्र पढ़े तो क्या हो?

अब्राहम लिंकन, फ्रायड, बालज़क, नज़रुल इस्लाम, काफ्का, दोस्तोयेव्स्की, ज्यार्ज साँद, नेपोलियन, खलील जिब्रान द्वारा लिखे गये दिल के संसार को खोलते दुर्लभ और प्रेरक प्रेमपत्र

▣ ओ. हेनरी, तुर्गनेव, एमेलीन स्तानेफ, पूरबी बैनर्जी, सुदर्शना द्विवेदी, लक्ष्मीकांत वैष्णव, विजया राज्याध्यक्ष, बलराम की रचनाओं एवं स्थायी स्तंभों से भरपूर

● **विस्तृत जानकारी अगले अंक में**

आज तक तेरे खतों से तेरी खुशबू न गयी!

महात्मा गांधी, प्रेमचंद, स्वामी रामतीर्थ, लेनिन, नाजिम हिकमत, नेपोलियन, दाग़, ज्यॉर्ज साँद के आश्चर्यजनक एवं अनूठे प्रेम पत्र.

▣ यात्रा एक वेश्यानगर की

'मन पत्थर' पर अंकित सीता चरण. . .जहां लड़कियां मन्नत मांगती हैं!. . .कवि नयनसुख की कब्र, जिसे देखकर उस लड़की ने कहा था, "अगर यह किसी कहानी-कार की कब्र होती तो मैं रोज इस पर फूल चढ़ाती!" धुंधली होती जिंदगी और गमज़दा आवाजों का कथा-रिपोर्ताज—**राबिन शा पुष्प** के मार्मिक संस्मरण.

▣ तुमको हमारी उमर लग जाये

पुराणों में दबे-ढके प्रसंगों के संदर्भ में भारतीय आख्यानों का अद्वितीय प्रेमोत्सर्ग जिस पर किसी रचनाकार ने कलम चलाने की तकलीफ गवारा नहीं की और इसे प्रस्तुत कर रहे हैं—**उमाकांत मालवीय**

. . . सेक्स, आत्मा और शरीर के एक लेखक के लिए क्या रखते हैं?— लेखक हेनरी मिलर से बातचीत

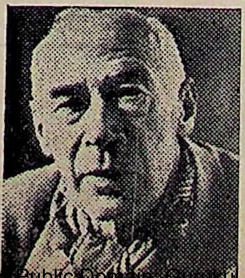

सारिका

१ जनवरी, १९८१

बेहतरीन प्रेमकथाओं का अनूठा संकलन

दोनों अंकों की प्रतियां अभी सुरक्षित करवा लीजिए

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

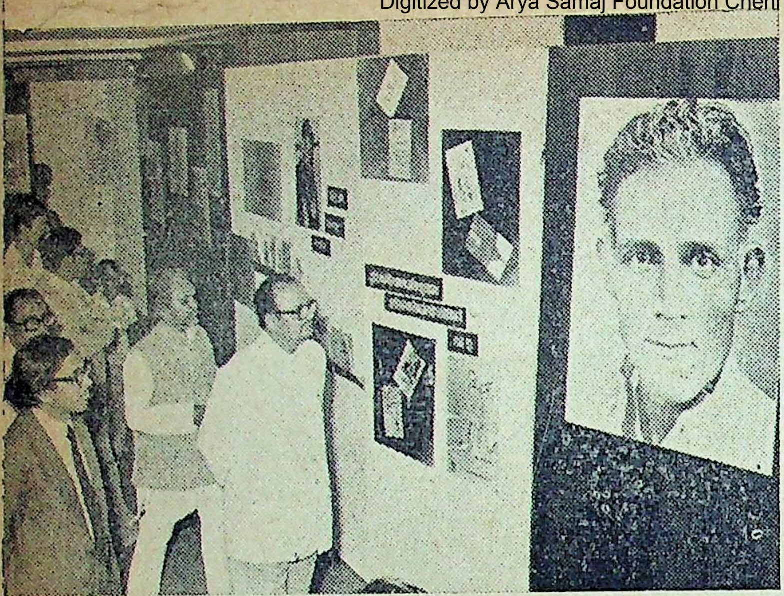

मुक्तिबोध के चित्र और कृतियों का अवलोकन करते हुए म.प्र. के मुख्यमंत्री अर्जुनसिंह, बालकवि बैरागी व अशोक वाजपेयी. छाया : प्रकाश हतवलने

मुक्तिबोध प्रसंग

सतह से उठता आदमी

●मृणाल पांडे

म. प्र. कला परिषद द्वारा आयोजित 'मुक्तिबोध प्रसंग' का उद्घाटन गत 13 नवंबर (जो स्वर्गीय कवि की जन्मतिथि है) को मुख्यमंत्री श्री अर्जुनसिंह ने राजकमल प्रकाशन द्वारा प्रकाशित तथा श्री नेमिचंदजैन द्वारा संपादित 'मुक्तिबोध ग्रंथावली' की प्रतियां कवि-पत्नी श्रीमती शांता बाई को भेंट कर किया. इसी अवसर पर 'पूर्वग्रह' के स्व. मुक्तिबोध पर केंद्रित अंक का विमोचन भी हुआ. इसके बाद एक सिनेमाघर में फिल्म 'सतह से उठता आदमी' दिखायी गयी, जो मुक्तिबोध की गद्य तथा पद्य रचनाओं पर आधारित है और इसकी पटकथा व निर्देशन मणि कौल के हैं. फिल्म, जिसकी काफी प्रतीक्षा की जा रही थी, कुल मिलाकर निराश करती है. मुक्तिबोध की रचनाओं की घुटन और संत्रास के चित्रों के बावजूद उनकी वह बीहड़ ऊर्जा, उनका धधकता आत्मविश्वास और मनुष्य की संघर्षशीलता तथा जिजीविषा के प्रति उनकी गहन श्रद्धा को फिल्म सक्षमता से व्यक्त नहीं कर पायी. कथा के तीन नायक, मुक्तिबोध की रचनाओं से ऐसे चुने गये हैं, जो कवि के रचनाधर्मी व्यक्तित्व के तीन अंगों का प्रतिनिधित्व करते कहे गये हैं. अंधेरे चक्करदार और उजाड़ भुतहा बंगलों, फटेहाल निम्न-मध्यमवर्गीय गलियों की गुंजलकों से गुजरती हुई पटकथा, सही पृष्ठभूमि तथा फोटोग्राफी काफी संवेदनशील होने के बावजूद निष्प्राण, निस्तेज और दिशाहीन ही रह जाती है. पात्रों का भावहीन उच्चारण तथा अभिनय कहीं भी मानवीयता की ऊष्मा की लौ नहीं देता. सिर्फ फिल्म के लगभग अंत में जब कवि की डायरी के कुछ पन्ने टाइपांकित रूप में पूरे पर्दे पर आते हैं, लगभग हर जमुहाते दर्शक ने अचानक मानों मुक्तिबोध का तेज और उनकी प्रतिभा की तड़प को एक साथ महसूस किया. शब्दों, विशेषकर कविता के अपने कुछ अनिवार्य आयाम हैं, जो ध्वनि तक फैलते हैं, पर दृश्य रूपाकारों में बदलकर (भले ही वे रूपाकार कितने ही प्रतीकात्मक हों) उनकी मूल ऊर्जा की सघनता नष्ट ही होती है, बढ़ती नहीं. फिल्म देखकर लगता है कि शब्दों का दृश्याकार बनना, ऐसे कि शब्द की शब्दवत्ता अखंड रहे, असंभव है. अच्छा होता, यदि रचनात्मक साहित्य के पीछे जाने की बजाय फिल्म मुक्तिबोध के व्यक्तित्व के उस भाग पर केंद्रित होती, जो दृश्य रूपाकारों से व्यक्त करना संभव होता.

14, 15 तथा 16 की शाम हुई कविता पाठ की गोष्ठियों, जिनमें हिंदी की लगभग चार पीढ़ियों के कवियों सर्वश्री नेमिचंद्र जैन, श्री हरिनारायण व्यास, विनोद कुमार शुक्ल, प्रभातकुमार त्रिपाठी, मलयज, विष्णु खरे, रघुवीर सहाय,

हलचल

सर्वेश्वरदयाल सक्सेना, चंद्रकांत दे... लीलाधर जगूड़ी, विष्णु नागर, ... रावत, सोमदत्त तथा अशोक वा... ने भाग लिया, जिन्होंने फिर य... दृढ़ता से सिद्ध की कि रचनात्मक ... के शब्दों का एकमात्र सार्थक तथा स... आयाम मानवीय वाणी की ध्वनि ... निहित है.

इस सबके साथ-साथ इसी प्र... अंतर्गत सुख्यात चितेरे अकबर प... के सियाही व बुरुश के अंकनों की प्रदर्शनी का उद्घाटन 14 तारीख को हुआ. प्रदर्शनी में कुल 43 चि... सभी चित्र चेहरों की शबीहें हैं—... विषय पर इतने सारे चित्रों में जा... (तकनीक एक ही होते हुए भी) स... अंतर होगा ही. श्री मुक्तिबोध के च... शबीह, जो 'पूर्वग्रह' के मुखपृष्ठ व ... के पोस्टरों व अन्य प्रपत्रों में भी ... गयी थी, आकर्षक लगती थी, पर ... इन सभी चेहरों के नेत्रों के खोख... निष्प्राण मुखौटे की भावशून्य... एकरसता का ही असर पैदा करते ...

14 तारीख को ही सा... गोष्ठी में मुक्तिबोध के गद्य पर श्री ... वर्मा ने एक बहुत सुचिंतित और ... आलेख पढ़ा—दूसरा आलेख मु... की कविता पर था, श्री कुंवर ... द्वारा, जो किन्हीं कारणों से स्व... सके. यह लेख भी एक सुलझा हु... बहुत संवेदनशील वक्तव्य था. ... बाद की परिचर्चा और प्रश्नोत्तर ... त्तेजक थे. कुल मिलाकर यह ... हिंदी में उभरती एक स्वस्थ व ... आलोचनात्मक दृष्टि के परिचा...

इस सब के साथ ही कलापरि... स्व. मुक्तिबोध के पत्रों, डायरि... लिपियों आदि की एक छोटी, पर ... जित प्रदर्शनी भी रखी गयी ... निस्संदेह मुक्तिबोध के पाठकों ... एक सुखद अनुभव थी.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

...विजन पर

...पाथ के फरिश्ते

...ई का फुटपाथ है अपने आप में एक ...दुनिया, एक समाज, एक कुटुंब! यही ...या है, जो रोजी-रोटी की तलाश में ... हुए हजारों-लाखों लोगों को घर की ...दिये हुए है. भले ही यह छत, वह छत ...जिससे बड़ी तथा पक्की छत कोई ... नहीं, खुला हुआ निस्सीम आकाश! ...स छत के तले पड़े अपने-अपने संघर्षों ...जूझते हुए जीने और जीते चले जाने ...हौसले भरते रहते हैं. . .इस दुनिया. . . ... इस दुनिया में बसे परिवारों में ...मी जीता है—आदमियत भी जीती ...जिसे महानगर का रंग-रोगन कतई ... 'कलर' में नहीं समेट पाया है. इन ...वारों में बसे हुए लोग एक दूसरे के ...भी नहीं हैं, फिर भी, सब कुछ हैं.

...माघी एक नटिन है. उसका पति माघी ...शीलरक्षा करते हुए एक गुंडे की चाकू ...शिकार हुआ. माघी अपने दोनों छोटे ...ों के साथ फुटपाथ पर रहती है. जगह-...ह तमाशा दिखाती है, 'बक्शीश' पाती ...और गुजारा करती है. फुटपाथ पर बसे ...परिवार का एक सदस्य है दादा बास्को! ...को चोरी करता है, पर अब उसका मन ... इस पेशे के प्रति हिकारत और पछ-...से पूर्ण है. उसे घर 'बनाना' है और ...निक किन्हीं क्षणों में—वह माघी को ... मन में समेट लेता है. वह ईसाई है, ...र धर्म उसके लिए सरहद नहीं है. . . ... परिवार का सदस्य बनता है पैंट-...टर! शरीर का व्यापार करने वाली ...ना! भीख मांगकर गुजारा करने वाले ...बाबा और जेबकतरा तात्या. जब कभी ...को के हाथ में कुछ नहीं होता या जमना ...क भी 'गि...क' नहीं फंसता, माघी को ...गे में नाममात्र की बक्शीश मिलती है, ... बाबा अपने भीख के कटोरे को खन-...ता है. रेजगारी गिनता है. एलान करता ...मेरे पास सब के लिए एक चाय और ...के पैसे हैं." और उनका दिन कट जाता ...इसी परिवार में वे एक दूसरे के लिए ...बुनते हैं. . .सपनों के पूरे होने की दुआ ... हैं और सपनों से टूट-टूटकर एक ...की दुखती रग को सहलाते हुए आपस में हिम्मत बांटते हैं. . .इस दुनिया में. . . और विशेषत: इस परिवार में अनायास शामिल हुआ व्यक्ति उनका कुटुंबी हो जाता है, वे उसके दुख-सुख के भागी बन जाते हैं.

'फुटपाथ के फरिश्ते' में याकूब सईद, अजय मेहरा, बृजभूषण साहनी तथा सविता बजाज. छाया: विक्रांत माथुर

यह कथा वस्तु है स्वर्गीय कृश्नचंदर के बहुचर्चित उपन्यास 'फुटपाथ के फरिश्ते' की. बंबई दूरदर्शन द्वारा निर्मित इस फिल्म के निर्देशक हैं बी. के. गिरि तथा पटकथा तैयार की है कृष्णकिशोर श्रीवास्तव ने.

'फुटपाथ के फरिश्ते' को मैं बंबई दूरदर्शन द्वारा अब तक निर्मित की गयी फिल्मों के मुकाबले श्रेष्ठ फिल्म मानती हूं. युवा निर्देशक गिरि कृश्नचंदर के उपन्यास में निहित मानवीय संवेदना को बड़ी गहराई से 'सेलूलाइड' पर उतारने में सफल हुए हैं. इसकी एक खूबी यह भी है कि इस फिल्म का हर एक पात्र अपनी संवेदना और संपूर्णता में उजागर हुआ है और अभिनय में बाजी मार ले गयी हैं सविता बजाज! सविता ने माघी के तेज तर्रार चरित्र की तह में डुबकी लगा संवेदनशील नारी के अंतर्द्वंद्व को बड़ी गहराई से जिया है. पैंट मास्टर की भूमिका में विशिष्टता लिये आये हैं बृजभूषण साहनी! जमना के रूप में इला अरुण भी जमकर आयी हैं और छिछोरे हावभाव से वेश्यावृत्ति करने वाली लड़की के चरित्र को हूबहू प्रस्तुत करने में सफल हुई हैं. तात्या की भूमिका में अजय मेहरा सहज हैं. □

● चित्रा मुद्गल

पत्र-पत्रिकाएं

महिला कथाकारों का संसार

कथा-साहित्य में लेखिकाओं का उल्लेखनीय योगदान रहा है. 'पुनश्च' का यह विशेषांक इसी योगदान की एक प्रस्तुति है. 'विचार खंड' में इस्मत चुगताई द्वारा उठाया गया भाषा का मसला, विमला पाटिल द्वारा नारी-अधिकारों के लिए उठायी गयी वाजिब आवाज, ममता कालिया द्वारा की गयी मानसिक व वैचारिक परिवर्त्तन की मांग और इन सबसे अलग मन्नू भंडारी द्वारा 'बंटी की रचना-प्रक्रिया' पर लिखित आलेख उल्लेखनीय सामग्री प्रस्तुत करते हैं.

आदमी और उसकी समझ के मुताबिक पैदा होने वाली तमाम आशाओं-निराशाओं का खुलासा करने वाली कहानी—'मैं चुप रहा' (इस्मत चुगताई), निम्न-वर्गीय बेबसी में जीते ईमानदार लोगों की दुनिया से साक्षात कराती कहानी—'केंचुल' (चित्रा मुद्गल) तथा मुक्ति की तलाश में संलग्न समूचा माहौल और तज्जन्य-मुक्तिकामी छटपटाहट प्रस्तुत करती कहानी—'तलाश' (नासिरा शर्मा) के अतिरिक्त अमानवीय स्थितियों की सहज प्रस्तुति के प्रयास में 'मंजिल पर' (प्रतिमा वर्मा) भी प्रभावपूर्ण रचनाएं हैं, जबकि शेष रचनाएं वस्तु और संप्रेषण की दृष्टि से इतनी प्रभावशाली नहीं हो सकीं. □

● महेश दर्पण

 CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

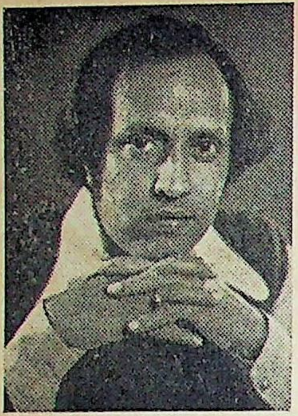

● छाया : नवल जायसवाल

"हमारी संस्कृति बहते हुए पानी की मानिंद है!"

▣ चंद्रकांत देवताले

जावरा जैसे छोटे कस्बे के लिए यह विस्मयकारी घटना ही थी कि वहां 'साहित्य और जनता' विषय पर सार्थक और विचारोत्तेजक बातचीत भी हो और आधुनिक चित्रों की प्रदर्शनी भी. प्रबुद्ध लोगों की अच्छी उपस्थिति के बीच 'अभिरुचि' संस्था का शुभारंभ इन्हीं दोनों प्रसंगों के साथ हुआ.

'साहित्य और जनता' विषय पर बोलते हुए श्री चंद्रकांत देवताले ने कहा : 'हमारी संस्कृति बहते हुए पानी की मानिंद है. जनता और साहित्य के बीच की दरार अनेक आर्थिक-सामाजिक विषमताओं का परिणाम है. इनके रिश्ते बहुत जटिल हैं. और अति सहजीकरण से इन्हें रिड्यूस नहीं किया जा सकता.

हमें उस दिन का इंतजार है—जब यह दरार कम होगी या पटेगी. वैसे जनता को अनपढ़ मानना और साहित्य पर अनाप-शनाप जिम्मेदारियां थोपना, दोनों ही चीजें गलत हैं. भूखे आदमी को भूख के बारे में बेहतरीन कविता सुनाने के बदले उसे रोटी मुहैया करना ज्यादा मानवीय कर्म है.'

बातचीत की दूसरी कड़ी में श्री निर्मल शर्मा ने मुक्तिबोध के एक प्रसंग से शुरुआत करते हुए कहा : 'मुक्तिबोध यह कहते थे कि हम जनता के लिए लिखते हैं. जनता के लिए रचना-कर्म करते हैं, लेकिन जनता कौन?'

इसी बात को आगे बढ़ाते हुए श्री शर्मा ने कहा—'एक रचनाकार को जनता के बीच जाना चाहिए. भले वे न समझें, इसका अफसोस नहीं करना चाहिए कि जनता क्या चाहती है. ऐसा नहीं कि जनता संस्कृतिहीन है.

जब-जब जनता से हम कटे हैं, तब-तब हमारा साहित्य खत्म हुआ है. आप जनता के विचार, जनता की चीजों को देखकर उन्हें अपनी रचना का कर्म बनायेंगे तो जनता आपको कहेगी कि यह हमारा राइटर है.'

कार्यक्रम के अध्यक्ष पद से श्री दिनकर सोनवलकर ने कहा कि—'रचनाकार चाहे आशावादी हो या निराशावादी, अंततः जनता व साहित्य के ज्वलंत प्रश्नों का साक्षात्कार करेगा ही. आज का पाठक या श्रोता सिर्फ कवि-सम्मेलन तक ही पहुंच पाया है. उन तमाम पत्र-पत्रिकाओं तक नजर डालने वाले आम पाठक या आम श्रोता की कमी महसूस होती है.'

इसी कार्यक्रम की अंतिम कड़ी में दो युवा चित्रकारों अमिताभ पांडेय (इंदौर) व मयंक शॉ (रतलाम) की कला प्रदर्शनी का आयोजन था, जिनमें अमिताभ पांडेय ने कला प्रदर्शनी के उद्घाटन के पूर्व अपनी कला-रचना के प्रति एक वक्तव्य दिया : **'चित्रकला ने गुफाओं से लेकर केनवास तक की यात्रा की है. चित्रकार भी आम जिंदगी में घटित घटनाओं से ही अपनी पेंटिंग का संसार पाता है. आग का पिंड ही नहीं, वह ऊर्जा का स्रोत भी है.'**

प्रदर्शनी का उद्घाटन श्री मदन नाहर ने किया. प्रदर्शनी में मयंक शॉ की पेंटिंग (मणिप्रभा) व अमिताभ पांडेय की (सूर्य-समुद्र-संगीत) पेंटिंग बेहद चर्चित रहीं. कार्यक्रमों का संयोजन किया था संस्था के सचिव श्री सुरेश उपाध्याय ने. ▣

● प्रस्तुति : ओम केलवा

भास नाट्य समारोह

मध्यप्रदेश नाटक-लोककला अका[दमी]
द्वारा उज्जैन में भास नाट्य समा[रोह]
एक अच्छी शुरुआत है, जिसमें मूल सं[स्कृत]
में भास के 'दूतवाक्यम्' का मंचन
निवास रथ के निर्देशन में किया गया.
भास के ही 'उरुभंग' को नृत्य ना[ट्य]
शैली में राजकुमुद द्वारा प्रस्तुत किया ग[या]
जिसमें कथक का सार्थक और स[...]
प्रयोग किया गया. भास के ही प्रभा[त]
कुमार भट्टाचार्य द्वारा अनूदित और ए.
के. रैना द्वारा निर्देशित चार नाटकों-
दूतघटोत्कच, कर्णभार, मध्यम व्या[योग]
तथा स्वप्न-वासवदत्ता का मंचन समा[रोह]
की एक उपलब्धि रही. यह पहला अव[सर]
था, जब कहीं भास के छह नाटक एक
समारोह में मंचित हुए. शूद्रक के 'मृच्छ-
कटिकम्' पर आधारित 'गारा की गा[...]
का भी मंचन इस समारोह में हुआ, जिस[का]
निर्देशन प्रभातकुमार भट्टाचार्य ने किया.

● प्रस्तुति : विनोद भटनागर

लघुपत्रिका प्रदर्शनी

"हमें यह देखकर आश्चर्य हो रहा
कि हिंदी में इतनी ज्यादा संख्या [में]
पत्रिकाएं छपती हैं और परासिया जै[सी]
छोटी-सी जगह में आती हैं."

"मैं तो आज तक धर्मयुग, दिनमा[न,]
नवनीत और साप्ताहिक हिंदुस्तान को [ही]
देश की सर्वश्रेष्ठ पत्रिकाएं मानता [था.]
इस प्रदर्शनी को देखने के बाद मैं अ[पनी]
अल्प जानकारी पर शर्मिंदा हूं और अ[पनी]
धारणा बदल रहा हूं."

ये विचार हैं बैंक ऑव महारा[ष्ट्र]
की परासिया शाखा द्वारा आयोजि[त]
लघुपत्रिका प्रदर्शनी देखने के बाद दो द[र्शकों]
और पाठकों के. 19 और 20 सित[ंबर]
की इस प्रदर्शनी में लगभग 200
पत्रिकाएं प्रदर्शित की गयी थीं. इस प्रद[र्शनी]
की एक उपलब्धि यह भी रही कि कस्बे [के]
पाठक पहली बार लेखक, संपादक [और]
प्रकाशक में भेद जान सके. इसी [...]
पटना में भारतीय युवा साहित्य[कार]
परिषद द्वारा भी एक अखिल भार[तीय]
लघुपत्रिका प्रदर्शनी का आयो[जन]
किया गया.

● प्रस्तुति : शिवनारायण शर्मा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पुस्तकें : सबके लिए

संस्कृति, साहित्य, विज्ञान, भारतीय जन-जीवन एवं बाल-साहित्य आदि अनेक विषयों पर अंग्रेजी तथा सभी भारतीय भाषाओं की उत्कृष्ट पुस्तकें.

नेशनल बुक ट्रस्ट अपनी विभिन्न पुस्तकमालाओं (भारत--देश और लोग, राष्ट्रीय जीवन-चरित माला, लोकोपयोगी विज्ञान माला, भारतीय लोक-संस्कृति एवं साहित्य पुस्तकमाला, तरुण भारती पुस्तकमाला, नेहरू बाल पुस्तकालय, आदान-प्रदान पुस्तकमाला) के अन्तर्गत हर उम्र, रुचि एवं आय वाले लोगों के लिए पुस्तकें प्रकाशित करता है. आदान-प्रदान पुस्तक माला का उद्देश्य है प्रत्येक भारतीय भाषा की सर्वश्रेष्ठ साहित्यिक पुस्तकों के अन्य भाषाओं में अनुवाद उपलब्ध करना.

आदान-प्रदान पुस्तकमाला में
प्रकाशित कुछ महत्वपूर्ण कृतियों के हिन्दी अनुवाद

मुक्ति (कन्नड़) : शांतिनाथ देसाई, रु.११.५०, **यात्रा का अंत** (तमिल) : नील पद्मनाभन, रु.७.००, **जागरी** (बंगाली) : सीतानाथ भादुड़ी, रु.९.००, **सीढ़ी के डंडे** (मलयालम) : टी.एस. पिल्लै, रु.२६.००, **आदर्श हिंदू होटल** (बंगाली) : विभूति भूषण बंद्योपाध्याय, रु. ९.००, **ग्रामायण** (कन्नड़) : आर.बी. कुलकर्णी, रु. १८.००, **दाना पानी** (ओड़िया) : एस. एन. महंति, रू.१४.७५, **गुजराती कहानियां** (सं.): यशवंत शुक्ल, अनिरुद्ध, 'ब्रह्मभट्ट', रु.९.००, **सुदामा के चावल** (मराठी) : श्रीपद कृष्ण कोल्हटकर, रु.१२.००

हमारे प्रकाशन नेशनल बुक ट्रस्ट पुस्तक केंद्र, ए-४, ग्रीन पार्क, नयी दिल्ली-११००१६, सिटी सेंट्रल लाइब्रेरी, अशोक नगर, हैदराबाद-५०००२०, ६७/२ महात्मा गांधी मार्ग, कलकत्ता-७००००९, राजकीय उच्चतर माध्यमिक विद्यालय, टाऊन हाल, अमृतसर के अतिरिक्त सभी प्रमुख पुस्तक विक्रेताओं के यहां उपलब्ध हैं.

नेशनल बुक ट्रस्ट, इन्डिया

ए-५, ग्रीन पार्क, नई दिल्ली-११००१६

...र, कोलमैन ऐंड कंपनी लिमिटेड, स्वत्वाधिकारो के लिए रमेशचन्द्र द्वारा नेशनल प्रिंटिंग वर्क्स, 10 दरियागंज, नयी दिल्ली-110002 से मुद्रित व प्रकाशित. जनरल मैनेजर : ...राम तरनेजा. पंजीकृत कार्यालय : डा. दादाभाई नौरोजी रोड, बंबई-400001. शाखाएं : 7, बहादुरशाह जफर मार्ग, नयी दिल्ली-110002; 139, आ... रोड, ...मदाबाद-380009; 105/7ए, एस. एन. बनर्जी रोड, कलकत्ता-700014. कार्यालय : 13/1, गवर्नमेंट प्लेस ईस्ट, कलकत्ता-700069; 63, मोंटियथ रोड, इग्मोर, ...स-600008; 407-1, तीरथ भवन, क्वार्टर गेट, पुणे-411002; 36, स्टेशन एप्रोच, सहबरी, बेंबले मिडिलसेक्स, लंदन, यू. के., लंदन टेलीफोन : 01-903-9696.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पंजीयत सं. D-(C)-779
पूर्व शुल्क के बिना डाक में डालने
की अनुमति-लाइसेंस सं. U-89

MADRAS
Regn. No. G6/TN/MS(C)/499

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar